एम.ए.एच.आई. -03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम

(इतिहास)

एम.ए.एच.आई. -03- आधुनिक विश्व का इतिहास - 2
(युद्ध एवं औद्योगिक समाज-1917-1945)

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड-2

इकाई संख्या

इकाई 6	
समझौतों द्वारा शान्ति स्थापन-लोकर्नो व पेरिस समझौता	5–12
इकाई 7	
समझौतों द्वारा शान्ति स्थापन-वाशिंगटन सम्मेलन	13–22
इकाई 8	
नवीन टर्की का जन्म-मुस्तफा कमाल पाशा	23–31
इकाई 9	
नए गणतंत्र-वाइमर रिपब्लिक	32–41
इकाई 10	
समाजवाद का सिद्धान्त-मार्क्स,लेनिन,माओत्सेतुंग	42–65

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. के.एस. गुप्ता
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष,मोहन लाल
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

डा. श्रीमती कमलेश शर्मा
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. बी.आर. ग्रोवर
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रो. जे.पी. मिश्रा
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी

डा. बी.के. शर्मा
इतिहास विभागाध्यक्ष, कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. याकूब अली खान
इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

डा. जी.सी. माथुर
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष
राजकीय महाविद्यालय कोटा

डा. याकूब अली खान
इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

डा. सुरेश शर्मा
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष
राजकीय महाविद्यालय कोटा

डा. जे. कर
इतिहास विभाग
यूनिवर्सिटी ऑफ नॉर्थ बंगाल, दार्जलिंग

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. याकूब अली खान्
इतिहास विभाग, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)बी.के. शर्मा
निदेशक(**अकादमिक**)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी अधिकारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन -Oct 2012 MAHI-03/ISBN No.-13/978-81-8496-262-8

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई-6

समझौतों द्वारा शान्तिस्थापन-लोकार्नो एवं पेरिस समझौता

6.0 उद्देश्य
6.1 इकाई की रूपरेखा
6.2 लोकार्नो समझौता
6.3 समझौते की धाराएं
6.4 समझौते की समालोचना
6.5 पैरिस समझौता
6.6 पेरिस समझौता और राष्ट्र संघ
6.7 समझौते की धाराएं
6.8 समझौते की समालोचना
6.9 समझौते की प्रतिक्रिया
6.10 सारांश
6.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
6.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

लोकार्नो-समझौता

6.0 उद्देश्य

लोकार्नो स्विटज़लैण्ड की एक प्राकृतिक तथा मनोहारी झील के निकट स्थित नगर है । यहां 5 अक्टूबर 1925 को तीन बड़े देशों के राजनेता-(1) चैम्बरलैन, (2) ब्रिया और (3) स्ट्रेसमेन मिलें । इन्होंने क्रमश : इंग्लैण्ड, फ्रान्स और जर्मनी का प्रतिनिधित्व किया । यहां कुल सात राज्यों के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए । अक्टूबर में इकट्ठे होने वाले सात राज्य थे-(1) जर्मनी (2) फ्रांस (3) इंग्लैण्ड (4) बेल्जियम (5) पौलेण्ड (6) चेकोस्लोवाकिया और (7) अटली । इन सात राज्यों ने लोकर्नो में सात राजनीतिक समझौते किए । इन समझौतों की कार्यान्विती 14 सितम्बर,1926 को हुई । समझौतो ने लोकर्नो भावना पैदा की और इस भावना ने आगे चलकर विश्व शांति स्थापनार्थ मार्ग प्रशस्त किया। यह समझौते विश्व इतिहास में लोकार्नो पेक्ट के नाम से जाने जाते है।

6.1 प्रस्तावना

प्रथम महायुद्ध तो सवा चार साल बाद समाप्त हो गया। वर्साय की संधियों के प्रावधानों ने फ्रांस के कटु शत्रु जर्मनी को हर दृष्टि से पंगु बना दिया। राष्ट्र संघ की स्थापना ने फ्रान्स को युद्ध के भय से सुरक्षा प्रदान की । परन्तु द्वितीय महायुद्ध के कीटाणु तो प्रथम युद्ध की संधियों की धाराओं में तिरोहित हो चुके थे। अत : फ्रान्स का जर्मनी के प्रतिशोधात्मक आक्रमण से भयभीत होना आवश्यक हो गया। इसलिये उसने संधियों द्वारा प्रदत्त शांति को तो शांति, का अन्त करने वाली शांति समझ लिया।

इसलिए फ्रान्स को 1919 में हुए अपने ही देश के अपने ही द्वारा निर्देशित समझौतों से संतोष नही हुआ । दूसरी बात यह थी कि 1918 में प्रेसिडेन्ट विलसन अब अमेरिका के प्रेसिडेन्ट नही रहे थे। अत : जर्मनी के अज्ञात हमला करने पर फ्रान्स के लिये अमेरिकी मदद के द्वार बंद हो नुके थे। लियोड जार्ज के उपवन जब इंग्लैंड मे मेकडोनाल्ड की सरकार बनी तो उसने भी आक्रमण के अवसर पर फ्रान्स की सुरक्षा की प्रत्यामूर्ति से साफ इंकार कर दिया।

ऐसी विषम परिस्थिति में फ्रान्स को अपनी सुरक्षा की खोज हेतु कुछ छोटे राज्यों से भी समझौते करने पड़े- ये राज्य थे (1) बेल्जियम, (2) इटली, (3) युगोस्लाविया (4) चैकोस्लोवाकिया और पौलेण्ड। 1917 में रूस की क्रांति हो चुकी थी । उपर्युक्त पूर्वी देशो पर रूस के आक्रमण का भय बना हुआ था।

अत: फ़्रांस ने राष्ट्र संघ के तत्वावधान में अपनी स्वयं की सुरक्षा की खोज की। 1924 में जेनेवा समझौता हुआ। जेनेवा प्रोटोकोल में विशाल निरस्त्रीकरण की योजनाएं बनाई गई परनु जेनेवा प्रोटोकोल की अकाल मृत्यु हो गई, क्योंकि इंग्लैंड ने यहाँ भी सुरक्षा की प्रत्यामूर्ति देने से मना कर दिया। उपशेक्त परिस्थितियों के वशीभूत होकर फ्रान्स को लोकार्नो के समझौते का सहारा लेना पड़ा।

6.2 लोकार्नो समझौता

शांतिपूर्ण सहजीवन और फ्रान्स को सुरक्षा प्रदान करने वाली हवा इस बार मित्र राज्यों के समझौतो से न उठकर पराजित जर्मनी के प्रस्तावों से उठती नजर आई थी। सर 1923 मे जर्मनी के राजनीतिक मंच पर दूरदर्शी और यथार्थवादी राजनेता स्ट्रेस्मेन का उदय हुआ । बर्लिन स्थित इंग्लैंड के मेधावी राजदूरत चेम्बरलेन ने रूस से भावी नवोदित पूर्वी तजों (पोलेण्ड, युगोसलेविया आदि) पर कम्युनिष्ट आक्रमणों से जर्मनी और फ्रान्स को सचेत किया। इस सामान्य शत्रु ने दो शत्रुओं फ़्रांस और जर्मनी के बीच बातचीत का रास्ता खोल दिया। फ्रान्स का नया विदेश मंत्री ब्रियां समझौते का प्रबल पक्षपाती था। इसलिये राजनायिक मार्गों द्वारा बातचीत चलती रही।

जर्मनी की शंका थी कि कही पश्चिमी राज्य रूस पर आक्रमण करते समय उसकी भूमि का अतिक्रमण नही करें? उसकी शंका का निवारण कर दिया गया। वर्साय-संधि द्वारा निश्चित पश्चिमी सीमा को स्वीकार करने के लिये जर्मनी अब तैयार था। किन्तु पूर्वी सीमा के निर्धारण को वह अन्तिम फैसला मानने के लिए तैयार नही था। परन्तु वह इस बात को मानने के लिए तैयार था कि बल प्रयोग करके वह उसका बदलने का विचार नही रखता। वार्तालाप के द्वारा इन कठिनाइयों का भी यथा सम्भव समाधान निकाल लिया जायेगा।

जर्मनी के दिमाग से पराजित राष्ट्र के मनोभाव का पराभाव किया गया । उसको राष्ट्र संघ का केवल सदस्य ही नहीं बनाया गया बल्कि उसे काउंसिल का स्थाई सदस्य भी बनाया गया । लोकार्नो में अब वह बराबरी के राज्यों की हैसियत से समझौते के लिये स्वयं पहुंचा । जर्मनी के अतिरिक्त फ्रान्स, ब्रिटेन इटली, बेल्जियम, पौलेण्ड तथा चैकेस्लोवाकिया के प्रतिनिधियों की वार्ता लोकार्नो में आरम्भ हुई।

लोकार्नो जैसे मनमोहक स्थान के आनन्द दायक वातावरण में बारह दिनों तक बातचीत चलती रही । वस्तुत: इस सम्मेलन में इतने अधिक स्नेह और सौहार्द का वातावरण था कि इसे पुरानी कटुता और शत्रुता का अंत करने वाली लोकार्नो की भावना कहा जाने लगा। 16 अक्टूबर 1925 को सम्मिलित राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा एक संधि पर हस्ताक्षर किये गये जो लोकार्नो पेक्ट के नाम से विख्यात है। इसमें कुल मिलाकर सात संधियों पर हस्ताक्षर किये गये जिनका विवरण इस प्रकार है -

6.3 समझौते की धाराऐं

ब्रिटिश इतिहासकार वारनर ने लिखा है-

" सर आस्टीन चेम्बर लैन, ब्रिया और स्ट्रैसूमेन के प्रयासों से लोकार्नो पेक्ट की सुखद धाराओं का निर्माण हुआ । इन धाराओं ने युगो पुरानी राइननदी की शत्रुतापूर्ण सीमा को युद्ध के भय से एक निश्चित समय तक सुरक्षित कर दिया । "

लोकार्नो व्यवस्था ने वस्तुत: युद्ध की अग्नि से यूरोप को राहत प्रदान की। अत गेथोर्न हार्डी ने यूरोप निवासियों के लिये लिखा है, " अब हम अग्नि अवरोधी मकान में रहते है, जो ज्वलनशील वस्तुओं से बहुत दूर है ।"

लोकार्नो पेक्ट की धाराएँ जिन पर सात राज्यों के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर 14 सित., 1926 को लन्दन में हुए-

(i) इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण संधि जर्मनी, फ्रान्स, ब्रिटेन, बेल्जियम-जर्मनी की सीमाओं की गारण्टी सम्बन्धी संधि थी । यही सन्धि वास्तव में लोकार्नो संधि थी । इसके द्वारा सभी हस्ताक्षर कारी शक्तियों ने इस बात की प्रत्याभूति दी कि वे वर्साय की संधि द्वारा निश्चित की गई जर्मनी, वेल्जियम और फ्रान्स की सीमाओं को सुरक्षित बनाये रखे तथा राईन प्रदेश के असेन्यकरण का वचन देते हैं ।

जर्मनी, वेल्जियम और फ्रान्स ने यह समझौता किया कि वे एक दूसरे पर तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त कभी आक्रमण नहीं करेंगे । इसके अलावा वे एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध भी नहीं छेड़ेंगे ।

जिन तीन अवस्थाओं में युद्ध छेड़ा जा सकता था वे निम्न लिखित थी-

(1) आत्म रक्षा,

(2) असेन्यकरण की व्यवस्था का उल्लंघपन तथा

(3) राष्ट्र संघ द्वारा आदेशित सेनिक कार्यवाही ।

इसके अतिरिक्त हस्ताक्षर कर्ता राज्यों ने अपनी बीच उत्पन्न होने वाले सब विचारों के विवादों को शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा हल करने तथा सन्धि का उल्लंघन करने वाले राज्यों के विरुद्ध सम्मिलित कार्यवाही करने का निश्चय किया । संधि का उल्लंघन हुआ है या नहीं इसका फैसला राष्ट्र संघ की कौसिल कर सकती थी । यह संधि जर्मनी के राष्ट्र सांघ में सम्मिलित हो जाने पर ही कार्यायित हो सकती थी। अस्तु जर्मनी को राष्ट्र संघ की काउंसिल का स्थाई सदस्य 1926 में ही बना दिया गा।

(ii) एक ओर जर्मनी दूसरी ओर फ़्रांस, बेल्जियम, पोलेण्ड, चेकोस्लोवाकिया के बीच चार पंच निर्णय सन्धियां हुई । मध्यस्थता सम्बन्धी यह सन्धि जर्मनी ने उपर्युक्त चारों देशो से अलग-अलग की। इन संधियों का उद्देश्य यह था कि यदि हस्ताक्षर कर्ता देशों के बीच कोई झगड़ा हो तो उसका फैसला पंचायती तरीके से किया जाए। लेकिन यह व्यवस्था इस सन्धि के बाद उत्पन्न होने वाले नये विवादों के लिए थी; पुराने विवादों के लिये नहीं। "

(iii) एक और फ़्रांस और दूसरी ओर पोलैण्ड तथा चेकोस्लोवाकिया के बीच गारण्टी की दो संधियाँ हुई । इनमें यह व्यवस्था थी कि यदि लोकार्नो समझौते का पालन नही होता और बिना उत्तेजना के युद्ध छिड़ जाता है तो दोनों राष्ट्र एक दूसरे की सहायता अविलम्ब करेंगे। इस प्रकार यह सन्धि एक पारस्परिक सहायता-सन्धि थी और इसके अंतर्गत हस्ताक्षर कर्ताओं ने यह वादा किया कि जर्मनी द्वारा आक्रमण किये जाने पर वे एक दूसरे की पारस्परिक सहायता करेंगे।

6.4 समालोचना

प्रख्यात इतिहास वेता हेज के शब्दों में-

" लोकर्नो की सन्धियों के द्वारा यूरोप के वातावरण में परिवर्तन हुआ और भविष्य में शांति कायम रख सकने की आशा का संचार हुआ । इससे पराजित और विजेता राष्ट्रों के बीच सामंजस्य स्थापित हो गया ओर इस घटना का युगान्तकारी घटना की तरह स्वागत हुआ"

लोकार्नो समझौते का सर्वश्रेष्ठ सुपरिणाम यह हुआ कि उसने वर्साय की प्रतिशोधपूर्ण नीति का अन्त कर दिया। 1926 से पूर्व अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में सदा जर्मनी को कुचलने, उससे बदलना लेने की कटुतापूर्ण चर्चाएं होती थी। इसने उग्रतापूर्ण नीति का अन्त किया तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा सनेह के नये युग का उदघाटन किया।

लोकार्नो ने अब राष्ट्र संघ का स्वरूप ही बदल दिया। लोकार्नो भावना ने बदले की हवा को ही बदल दिया। इस भावना की प्रशंसा आगे चलकर वियतनाम संकट के संदर्भ में ब्रिटिश प्रधान मंत्री ईडन और भारत के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने भी सन् 1956 में की। उन्होंने बतलाया कि दुनिया के झगडे खत्म करने हेतु आज फिर लोकार्नो भावना को पुन: स्थापित करने की आवश्यकता है।

लोकार्नो समझौते के आलोचनात्मक पक्ष को लेकर यह कहा जा सकता है, " लोकार्नो युद्ध और शान्ति के वर्षो के बीच विभाजक-रेखा नही बल्कि एक महर कूटनीतिक भ्रम था।" सर्व प्रथम लोकार्नो से जर्मनी की पूर्वी सीमा की समस्या का समाधान नहीं हुआ। जर्मनी ने अपनी पूर्वी सीमा को अंतिम नहीं माना था जो गारंटी फ्रान्स और जर्मनी तथा बैल्जियम ने जर्मनी को उसकी पश्चिमी सीमाओं के लिये प्रदान की थी ।

इसका अभिप्राय यह था कि जर्मनी को अपनी सीमा पूर्वी देशों की ओर बढ़ाने की छूट थी । अर्थात चेकोस्लोवाकिया और पौलेण्ड पर जर्मन आक्रमण को रोकने के लिये कोई प्राविधिक प्रबन्ध नहीं किये गये । अत: हुआ भी यही कि हिटलर का प्रथम आक्रमण, द्वितीय युद्ध के प्रारम्भ में चेकोस्लोवाकिया से ही हुआ। निश्चित रूप में यह लोकार्नो की एक स्पष्ट त्रुटि थी। कार के अनुसार-लोकार्नो वर्साय सन्धि और राष्ट्र संघ विधान दोनों के लिये घातक था ।

6.5 पेरिस समझौता

अमेरिका के गैर सरकारी क्षेत्रों में कुछ समय से युद्ध को अवैध घोषित करने के लिये आन्दोलन चल रहा था । युद्ध का अंत वर्तमान तनावपूर्ण परिस्थितियों में असम्भव था । अब तक संसार के राज्य अंतर्राष्ट्रीय विवादों को निबटाने के लिये बल प्रयोग के उपयोग का परित्याग करने को तैयार नही थे परन्तु पौलेण्ड प्रथम युद्ध में बुरी तरह परास्त होकर कट चुका था। अब वह युद्ध को सहन करने हेतु बिलकुल तैयार नहीं था और इसी भावना से प्रेरित होकर पोलैंड के प्रतिनिधि ने 1927 में राष्ट्रसंघ सेम्बली के सामने युद्ध को निषिद्ध करने तथा अंतर्राष्ट्रीय विवादों को निबटाने के लिये शान्तिपूर्ण साधनों को अपनाने का प्रस्ताव रखा था।

यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ था। इस दिशा में एक प्रभावशाली प्रयत्न पेरिस में भी हो रहा था। फ्रांसीसी विदेश मंत्री ब्रिया ने अप्रैल 1927 में अमेरिकी जनता के नाम एक सन्देश भेजा। इसमें उसने यह सुझाव दिया था कि अमेरिका के युद्ध के प्रवेश के दशवें वार्षिकोत्सव के अवसर पर फ्रान्स और अमेरिका सिद्धान्ततः युद्ध को एक साधन के रूप में अस्वीकार करने का पारस्परिक समझौता करें। फ्रान्स और अमेरिका के पारस्परिक सम्बन्ध उस समय बिल्कुल मधुर थे। उनमें आपस में किसी भी प्रश्न पर झगड़ा होने की कोई सम्भावना नही थी ।

इस दशा में इस प्रकार के समझौते का व्यावहारिक महत्व कुछ नही था। अतएव अमेरिकी विदेश सचिव केलॉग ने प्रारम्भ में फ्रांसीसी प्रस्ताव का उत्तर देने में शिथिलता दिखाई। परन्तु इस समय अमेरिका में युद्ध को अवैध घोषित करने का आन्दोलन काफी जोर पकड़ रहा था। अतः छः मास बाद अमेरिकी विदेश सचिव केलॉग ने सुझाव रखा कि प्रस्तावित समझौता बहुपक्षीय होना चाहिए जिसमें विश्व के समस्त राष्ट्र शामिल हो सके। और इसमें सभी राष्ट्रीय नीति के साधन के रूप में युद्ध का प्रयोग त्याग देने की प्रतिज्ञा करें। यह सुझाव फ्रान्सीसी मंत्री को तुरन्त स्वीकार न हुआ। परन्तु अप्रैल में ही ब्रिया ने फ्रांसीसी अमेरिकी पत्र व्यवहार के जर्मनी, ब्रिटेन, इटली और जापान की सरकारों के समक्ष प्रस्तुत करना स्वीकार कर लिया।

पैरिस पैक्ट का शान्तिपूर्ण समझौता युद्ध के प्रयोग के विरुद्ध मानवीय आशाओं का संचार करने वाला नजर आया। दूसरे शब्दों में समझौते का उद्देश्य बहुत आकर्षक था। इसलिये केलॉग के प्रस्ताव के अनुसार अमेरिका ब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी, इटली, जापान, बेल्जियम, पौलेण्ड तथा चैकोसलोवाकिया के प्रतिनिधि 27 अगस्त 1927 को पेरिस में एकत्र हुए । इन नौ राज्यों ने मिलकर एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। इसके अनुसार उन्होंने निश्चित किया कि वे राष्ट्रीय नीति के साधन के रूप मे युद्ध का प्रयोग नहीं करेंगे और अपने झगड़ों को निबटाने के लिए युद्ध का आश्रय नही लेंगे।

यह समझौता पेरिस पैक्ट अथवा केलॉग-ब्रिया पेक्ट के नाम से प्रसिद्ध है । इस समझौते के अनुसार हस्ताक्षरकर्ता केवल उसी हालत में अस्त्र शस्त्र उठा सकते थे जब उनकी अपनी सुरक्षा खतरे में हो। ब्रिटेन ने यह स्पष्ट कर दिया कि 'उसकी आत्मरक्षा के अधिकार में विश्व के कुछ ऐसे भागो की रक्षा का अधिकार भी सम्मिलित है जिनका कल्याण और अखण्डता दोनों हमारी सुरक्षा के लिये विशेष तथा महत्वपूर्ण स्थान रखते है।"

अमेरिका के लिये आत्मरक्षा में ऐसी कोई भी कार्यवाही शामिल न थी जो मुनरो सिद्धान्त का उल्लंघन करने के लिए आवश्यक हो। दूसरे शब्दों में प्रत्येक राज्य अपने कामों का एक मात्र निर्णायक था। इसलिये बहुत लोग इस समझौते को व्यावहारिक उत्तरदायित्व की अपेक्षा सेद्धान्तिक घोषणा ही अधिक मानते थे। समझौते को कार्यान्वित करने के लिए किसी प्रकार की संस्था या संगठन का निर्माण नहीं किया गया था।

6.6 पैरिस पेक्ट और राष्ट्र संघ

कार के अनुसार पेरिस समझौता केवल एक नैतिक घोषणा थी और राष्ट्र संघ का विधान एक राजनीतिक संधि।

पेरिस समझौते के द्वारा सभी प्रकार के युद्धों की निन्दा की गयी थी, परन्तु यदि कोई राज्य युद्ध शुरू करे तो उसको रोकने के लिये इसके द्वारा कोई व्यवस्था नही की गयी थी। राष्ट्र संघ में कुछ अवसरों पर युद्धों का आश्रय लेने की अनुमति थी और कुछ युद्धों का उसमें निषेद्ध था। इसके विधान ने युद्ध का सर्वथा बहिष्कार नही किया था परंतु इसमें एक बात की व्यवस्था अवश्य विद्यमान थी कि युद्ध शुरू करने वाले राज्यों के खिलाफ कर्यवाही की जा सके। निषिद्ध युद्धों के लिये दण्ड देने की व्यवस्था इसमें मौजूद थी । इस दृष्टि से पेरिस पेक्ट में बहुत बड़ी त्रुटियां थी। इसके उपरान्त भी पेरिस पेक्ट के प्रावधान राष्ट्र संघ के सदस्यों को अपनी भावना से प्रभावित करते रहे।

6.7 समझौते की धाराएं

प्रख्यात इतिहासकार लैंगसम के अनुसार पैरिस पेक्ट की मुख्य तीन धाराएं थी। समझौते के हस्ताक्षर कर्ताओं में अपने राज्यों की सम्बन्धित जनता की ओर से शपथ ली कि :

(1) अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिये वे युद्ध के साधन का परित्याग करते हैं। इसके अतिरिक्त एक दूसरे के आपसी सम्बन्ध तनाव रहित बनाने हेतू भी वे युद्ध का अपनी राष्ट्रीय नीति के रूप में भी परित्याग करते है।

(2) वे अपने सभी प्रकार के झगड़ों के निवारण के लिये चाहे वे किसी भी प्रकार उत्पन्न हुए हो केवल शान्तीपूर्ण समझौते के माध्यम से ही निर्णय लेंगे।

(3) जो राज्य अपनी समस्याओं के हल हेतू युद्ध का सहारा लेगा उसे इस संधि से होने वाले लार्भो से वंचित कर दिया जायेगा।

(4) सचिव केलॉग ने उपर्युक्त दस्तावेज की कापियां अपने हस्ताक्षर से विपिन राज्यों को भिजवाई ।

6.8 समालोचना

सन 1929 में कुछ राज्यों ने यह प्रयत्न किया कि पेरिस-पैक्ट के निर्णयो के अनुसार राष्ट्रसंघ के विधान में संशोधन किया जाए और युद्ध का सर्वथा बहिष्कार करते हुये लड़ाई करने वाले राज्यों को दण्ड देने की व्यवस्था की जाय। इस वर्ष ब्रिटिश प्रतिनिधि दल ने राष्ट्रसंघ के समुख इस आशय का एक प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया। फ्रांसीसी प्रतिनिधि दल ने इसका हार्दिक स्वागत किया क्योंकि इसमें उसकी अपनी सुरक्षा का शुभ चिन्ह दिखाई पड़ता था। प्रस्ताव पर उस

समय मत लिया जाता तो यह सम्भव था कि वह बहुमत द्वारा स्वीकृत ले जाता। लेकिन अनुमोदन के समय शायद उसकी वही दुर्गति होती तो जेनेवा प्रोटोकोल की हुई थी।

अत: दूरदर्शिता के साथ यह निश्चित किया गया कि इस प्रश्न को दूसरे अधिवेशन तक स्थगित कर दिया जाए। इसके बाद आर्थिक संकट का युग आया और ब्रिटेन में सरकार भी बदल गयी। अतएव राष्ट्रसंघ में सम्मिलित करने का प्रस्ताव ज्यों का त्यों पडा रहा।

6.9 समझोते की प्रतिक्रिया

सभी युद्धों को निषिद्ध कर देने से पेरिस पैक्ट का दूसरा नतीजा यह हुआ कि जिन राष्ट्रों ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे वे बिना युद्ध घोषणा किये ही युद्ध लड़ने लगे। उदाहरण के लिये 1931 मे जापान ने बिना घोषणा किये ही चीन के साध युद्ध जारी कर दिया। इस प्रकार अघोषित युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक दुर्भाग्यपूर्ण सिद्धान्त बन गया।

सभी तथ्यों के अवलोकन के उपरान्त हम कह सकते है कि पैरिस पैक्ट एक पवित्र घोषणा का संकल्प मात्र था जिसका व्यावहारिक मूल्य कुछ भी नही था। संकल्प से अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का हल नही किया जा सकता और इसलिये पेरिस पैक्ट के बावजूद दुनिया में युद्ध होते रहे।

यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस पैक्ट को आरम्भ किया और अनुमोदन भी तथापि उसने एक विशेष बिल पास करके अमेरिकी नौ -शक्ति को दुगुना कर लिया। यह एक आश्चर्य की बात ही की जा सकती है। जर्मनी, इटली, और जापान जैसे राज्य पेरिस पेक्ट शुभ संकल्पों पर निर्भर रहने की अपेक्षा सेनिक संधियों और तैयारियों को अधिक महत्व देने लगे। यही हाल फ़्रांस और उसके सभी साथी राज्यों का भी था। डॉ. दीनानाथ वर्मा के अनुसार सुरक्षा और चिरशान्ति केवल शुभाकंक्षा और कल्पना की बात रह गई। "

6.10 सारांश

जिस प्रकार जैनेवा समझौते के असफल होने के कारण फ्रान्स को लोकार्नो समझौते के निर्माण के लिये प्रयत्नशील होना पड़ा इसी प्रकार लोकार्नो की असफलता के परिणाम स्वरूप फ़्रांस को अपनी सुरक्षा के लिये पेरिस पेक्ट के निर्माण हेतु प्रयत्नशील होना पड़ा। पेरिस पैक्ट पर हस्ताक्षर करने वालों की संख्या राष्ट्र संघ के सदस्यों की संख्या से भी अधिक हो गयी। इसलिये पेरिस पैक्ट को राष्ट्र संघ के कनवेंशन में सम्मिलित करना कठिन हो गया।

लोकार्नो पेस्ट का निर्माण मनोहारी और भाईचारे की भावना से हुआ था। उसका मूल्यांकन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि उसने सह-अस्तित्व की भावना को उत्पन्न किया तथा राष्ट्रों में "जिओ और जीने दो" के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। यद्यपि भारत के नेहरू और इंग्लैंड के ईडन ने लोकार्नो भावना की दुहाई वियतनाम संकट के अवसर पर भी दी फिर भी लोकार्नो का अन्त उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार जेनेवा प्रोटोकोल का।

केलॉग-बियां पैक्ट या पेरिस पैक्ट ने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल के लिये युद्ध के माध्यम का पूर्णत: निषेद्ध कर दिया। सोवियत रूस ने भी इस महत्वाकंक्षी समझौते के प्रति अपनी रुचि दिखाई। इस पैक्ट में सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि पैक्ट निर्माताओं ने पैक्ट

की धाराओं का उल्लंघन करने वालो के लिये अपने पास कोई स्थाई सेना का प्रावधान नही किया।

पेरिस पैक्ट में प्रावधान था कि कोई भी राज्य युद्ध आरम्भ करने के पूर्व युद्ध की घोषणा करें। जापान ने सन् 1931 में मंचूरिया पर हमला बिना घोषणा किये ही कर दिया। इस प्रकार शनैः शनैः पेरिस समझौते की घोषणा वाली धारा इटली और जर्मनी द्वारा ताक पर रख दी गई । आक्रामकों ने अघोषित युद्ध की पद्धति का अनुसरण किया। इस प्रकार पेरिस पेक्ट पतन की ओर प्रशस्त हुआ। इसके असफल होने का एक करण यह भी था कि इसे राष्ट्र संघ के संविधान की धाराओं का अंग नही बनाया जा सका। इसका स्वरूप आदर्शयुक्त था और युद्ध को रोकने के लिये कोई रचनात्मक प्रावधान पेरिस पैक्ट में नही था।

"अस्तु लोकार्नो पैक्ट ने वर्साय संधि (1919) के उपरान्त शान्ति संदेशवाहक और पेरिस पैक्ट ने युद्ध के विरुद्ध उद्घोषक की सफल भूमिका निभाई।

6.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लोकार्नो पैक्ट की असफलता ने पेरिस पैक्ट के लिये किस प्रकार भूमिका निर्माण की?
2. फ्रान्स ने लोकार्नो तथा पैरिस पैक्ट के निर्माण हेतू क्यों और क्या-क्या प्रयास किये?
3. पैरिस पैक्ट की धाराओं की व्याख्या कीजिये?
4. पेरिस पैक्ट का विस्तार से उल्लेख करते हुए यह भी बतलाइये कि यह क्यों असफल रहा?

6.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डब्ल्यू सी. लांगसम, दी वर्ल्ड सिन्स 1914
2. कार, ई. एच, इंटरनेशनल रिलेशन बिटवीन दी टू वर्ल्ड वार्स।
3. रेपर्ड, डब्लू. ई. दी क्यूस्ट फॉर पीस सिन्स दी वर्ल्ड वार ।
4. सुमन. एफ. डी. एल. इन्टरनेशनल पालिटिक्स।
5. गेथोर्न हार्डी, ए सौर्ट हिस्ट्री आफ इंटरनेशनल पीस।
6. डा. दीनानाथ वर्मा : अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध।

इकाई-7

समझौते द्वारा शान्ति-स्थापन-वाशिंगटन सम्मेलन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 शांति को बचाने का प्रयास

7.3 सम्मेलन के लिए जिम्मेवार तत्व

7.4 सम्मेलन की कार्यवाही

7.5 सम्मेलन का मूल्यांकन

7.6 अभ्यास कार्य

7.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

दोनों विश्व युद्धों के बीच के काल को शांति काल कहा गया है । 1920 के बाद शांति की सुरक्षा के लिये कई प्रयास किये गये । सुरक्षा की समस्या पर पैरिस के शांति सम्मेलन में काफी विचार हुआ था और लोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि इसके लिये एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना आवश्यक है। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर राष्ट्र संघ की स्थापना हुई थी। लेकिन शांति सुरक्षा के लिये केवल राष्ट्रसंघ पर्याप्त प्रतीत नही हो रहा था। अत: सुरक्षा को कायम रखने के लिये राष्ट्रसंघ के बाहर भी विभिन्न प्रकार के प्रयास किये गये। ये प्रयास दो तरह के थे एक तो विभिन्न राष्ट्रों ने मिलकर आपस में सुरक्षा समझौते किये, और दूसरे हथियार बंदी की होड़ को नियंत्रित करके व्यापक निरस्त्रीकरण करने के प्रयास किये गये। सन 1921 -22 में वाशिंगटन सम्मेलन भी एक ऐसा ही प्रयास था। प्रस्तुत ईकाई में वाशिंगटन सम्मेलन का शांति और सुरक्षा के लिये किये गये प्रयास की समीक्षा की गई है। वाशिंगटन सम्मेलन ऐसे ही प्रयासों में एक कड़ी है। इसी सम्मेलन के बाद डावेस योजना तथा लोकार्नो पैक्ट शांति और सुरक्षा के अगले कदम कहे जा सकते है। इन प्रयासों से यद्यपि पूर्ण सफलता नही मिली परन्तु विद्वान इ.एच.कार ने इन वर्षो की सफलता को यूरोप के इतिहास में प्रथम विश्व-युद्ध के बाद के "सुनहरे वर्ष" कहा है। प्रस्तुत ईकाई का नामकरण संधि से शांति इन वर्षो में किये गये शांति और सुरक्षा के लिये प्रयासों की ओर संकेत करता है। लोकार्नो समझौते को नये युग का सूत्र पात कहकर उसकी प्रशंसा की गई है। उस समय के कूटनीतिज्ञों और पत्रकारों ने लोकार्नो की भावना को यूरोप की सभी बीमारियों के लिये एक अचूक दवा माना।

7.1 प्रस्तावना

सन् 1918 में मित्र राष्ट्रों की विजय से विश्व को ना तो शांति और ना ही सुरक्षा मिल सकी। मित्र राष्ट्रों ने भयंकर परिस्थतियों में जो विजय प्राप्त की थी उससे कोई शिक्षा नही ली । सत्ता और लालच के वशीभूत होकर उन्होंने अपनी विजय को नकार दिया। बीस वर्ष से भी कम

समय मे 1919 - 20 की वर्साय संधि नष्ट हो गयी। इस शांति संधि के नष्ट होने के कारण स्पष्ट थे। इस शांति संधि की कुछ शर्ते अनावश्यक रूप से कठोर थी । इस शांति संधि के निर्माताओं ने विल्सन के चौदह सिद्धांतों की ओर कोई ध्यान नही दिया। वर्साय संधि में जर्मनी और उसके सहयोगियों से केवल युद्ध के लिये दोषी ठहराया था। ये ऐतिहासिक और मनौवैज्ञानिक दृष्टिकोण से वंचित था। क्योंकि जर्मनवासियो को मजबूर किया गया था कि वे अपना दोष स्वीकर करें इसलिए उन्होने इस दोषारोपण के विरुद्ध विरोध किया और उनमें बदले की भावना भी पैदा की । पैरिस सम्मेलन में जर्मनी और रूस दोनों राष्ट्रों को निरादर का स्थान दिया गया था। ये पैरिस सम्मेलन के कूटनितिज्ञो की भारी भूल थी । इससे दोनों राष्ट्रों में एक दूसरे के नजदीक आने का प्रयास किया।

जब हम पीछे मुड़कर वर्साय संधि की ओर देखते है तो लगता है कि विल्सन के शांति समझौते की प्रकृति में कोई ऐसी बात थी जिससे कि विफल होना निश्चित था। हस्ताक्षर की स्याही सूखने से पहले 1919-20 की संधियाँ कई पहलुओं से पुरानी पड़ने लगी। वास्तव में वे ऐसी संधियाँ थी जिन्होंने बीसवी शताब्दी की समस्या के लिये 19 वी शताब्दी का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया। आत्मनिर्णय के आधार पर उन्होंने यूरोप को 1914 से भी अधिक संख्या में स्वतंत्र राजनीतिक ईकाईयों में बाँट दिया। परिणाम ये हुआ कि प्रतिस्पर्धा और व्यापार और शस्त्रों की होड़ में और भी बढ़ोतरी हुई। 1919 में यूरोप को अधिक संख्या में प्रतिस्पर्धा और विरोधी राष्ट्र नही चाहिए थे अपितु अधिक एकता की योजना की आवश्यकता थी। इन संधियों की एक खतरनाक कमी ये थी कि आर्थिक संख्याओं का कोई हल नही ढूंढा गया था। फ्रांसीसी चाहते थे कि वर्साय संधि का पूर्ण पालन किया जाये क्योंकि उन्हें डर था कि कही जर्मनी फिर से अपनी शक्ति संचित करके अपनी हार का बदला न ले लें। वे अपनी राष्ट्र की सुरक्षा में अधिक दिलचस्पी रखने थे। न कि यूरोप के आर्थिक पुर्नरूथान में। इस सुरक्षा के लिये वे केवल राष्ट्रसंघ पर निर्भर रहना नही चाहते थे।

इन वर्षो में ब्रिटेन की नीति शांति स्थापना के लिये फ्रांस के बिल्कुल विरुद्ध थी । इंगलिश चैनल के कारण यूरोप से कटे होने के कारण उन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा का डर नही था। व्यापारिक राष्ट्र होने के कारण वह यूरोप का आर्थिक पुनर्ररूत्थान चाहते थे। वह जर्मनी का भी आर्थिक पुर्नरूत्थान चाहते थे। जिससे उन्हें जर्मनी में फिर से ब्रिट्रिश निर्यात के लिये बाजार मित्र सके ।

कुछ आधुनिक इतिहसकार इस बात पर बल देते है कि शांति की विफलता का कारण अमरीका का वर्साय संधि को मान्यता नहीं देना था। यह आरोय लगाया जाता है कि वर्साय संधि को मान्यता ना देकर अमरीका ने अन्तर्राष्ट्रीयता के आदर्श को धोखा दिया है और प्रगति की घड़ी को सेकड़ों वर्ष पीछे मोड़ दिया है लेकिन अमरीका के कुछ अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं ने वर्साय संधि की आलोचना इसके अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त के कारण नहीं की बल्कि वे इस संधि को अन्याय पूर्ण तथा भविष्य में भयानक युद्धों की जननी मानते थे। अमरीका में जनमत युद्ध तथा शांति दोनों के विरुद्ध था। ये विचारधारा बलवती हो रही थी कि अमरीका ने युद्ध में हिस्सा लेकर अपनी अंगुलिया जलायी है। उसने युद्ध मे, हिस्सा अच्छे आर्दशों से वशीभूत होकर लिया था परन्तु यूरोप के राष्ट्रों ने यह सिद्ध कर दिया कि उन्होने अपनी पुरानी आदतों को छोड़ा नही है

जैसा कि अपने पड़ोसी के प्रदेश पर अधिकार करना और एक दूसरे की पीठ में छुरा घोंपना। यही अच्छा होगा कि अमरीका इन झंझटों से अपने हाथ खींच ले।

7.2 शांति को बचाने के प्रयास

1920 के मध्य शांति को बचाने के बहुत से प्रयास किये गये । इसीलिये विद्वान इ.एच. कार ने कहा है कि प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध के बीच होने वाली करीबन हर महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना जो कि अंतर्राष्ट्रीय चरित्र की थी वह वर्साय संधि का परिणाम थी ।

1921 -22 में वाशिंगटन में जो शक्तियाँ एकत्रित हुई थी उनका भी प्रयास शांति को बचाना था। इन शक्तियों ने बहुत सी संधियों को मान्यता दी जिसका उद्देश्य सुदूर पूर्व में यथा-स्थिति स्थापित करना था। ये सभी संधियां तथा इनके साथ दूसरी बहुत सी छोटी संधियां वास्तव में शांति समझौते की अंग थी । युद्ध के पश्चात अमरीका की जो शांति समझौते के लिये प्रतिक्रिया थी वह एक तरफ पूर्ण आदर्शवाद से प्रेरित थी तो दूसरी तरफ वह पूर्ण सावधानी अपनाना चाहता था। परन्तु सुदूर पूर्व में अमरीका अपने आप को पूर्ण तटस्थता की नीति से बांध नहीं सकता था। युद्ध की समाप्ति के पश्चात जापान प्रशांत सागर की प्रभावशाली शक्ति बन गया था। जबकि युद्ध में उसकी भूमिका नगण्य से कुछ अधिक थी। वर्साय संधि के द्वारा जापान को जर्मनी से कियोओचो का प्रदेश मिला था। जो कि चीन के शानतुंग प्रदेश का एक अंग था। उत्तरी प्रशांत सागर में भी जापान को जर्मनी के द्वीपों पर संरक्षण अधिकार प्राप्त हो गये थे। रूस के हट जाने के कारण जापान चीन की सीमाओं पर एक मात्र शक्ति बन गया था। और यही नही रूस और जर्मनी नौ सेना के नष्ट हो जाने के कारण जापान सुदूर पूर्व में सबसे बड़ी नौसेनिक शक्ति बन गया। और साथ ही वह विश्व की तीसरी महा नौसेनिक शक्ति बन गया था। जापान का चीन को खतरा और प्रशांत सागर में जापान का नौसेना में सर्वोच्चता ये दोनों तथ्य अमरीका के लिये असहनीय थे। इसीलिये 1921 के उत्तरार्द्ध ने अमरीका ने अन्य महाशक्तियों को आमंत्रित किया था जिनमें ब्रिटिश साम्राज्य, जापान, फ्रांस और इटली के साथ तीन और राज्य चीन, नीदरलैंड और पुर्तगाल थे। जिनकी प्रशान्त सागर में दिलचस्पी थी तथा बेल्जियम को केवल भावनात्मक आधार पर आमंत्रित किया गया था। इस सम्मेलन का उद्देश्य प्रशान्त सागर में शस्त्रों की कमी करने के साथ सुदुर पूर्व की समस्या को हल करना था। यह सम्मेलन नवम्बर 1921 में वाशिंगटन में बुलाया गया था।

अपने तत्कालीन कारणों तथा जल और थल युद्धों की दृष्टि से प्रथम विश्व युद्ध मुख्यत: यूरोपीय संघर्ष था । एशिया-समूह तथा एशिया भूमि पर कोई बड़ी लड़ाई नहीं हुई । फिर भी इस युद्ध के दौरान एशिया के राष्ट्र किसी ना किसी समय मित्र और सहयोगी राष्ट्रों से संबद्ध थे। जापान ने भी अपनी विस्तार वादी नीति को सफल बनाने के लिये मित्र राष्ट्रों की ओर से प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लिया। कीटन का कथन है कि, जापान ने इस विश्व युद्ध में मंचूरिया के बाहर एशिया महाद्वीप में अपने प्रभुत्व और साम्राज्य प्रसार का सुनहरा अवसर देखा। ये बात ध्यान देने लायक है कि आंग्ल जापानी मंत्री के अन्तर्गत जापान मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में भाग

लेने के लिये बाध्य नही था। फिर भी युद्ध से लाभ उठाने के लिये जापान ने विस्तारवादी नीति का आश्रय लिया जो जापान की इक्कीस मांगों से स्पष्ट है जो चीन के सामने रखी गई।

युद्ध के दौरान जापान को चीन पर अपना प्रभाव स्थापित करने का सुनहरा अवसर प्राप्त हो गया। उस समय सभी यूरोपीय देश युद्ध में व्यस्त थे और चीन की ओर ध्यान देने का किसी के पास समय नहीं था। जापान सरकार ने इस अवसर का लाभ उठाने की योजना बनाई 1913 में चीनी गणतंत्र के राष्ट्रपति यूआनशिकाई की सेना ने नानकिंग पर अधिकार करते समय जापानियों के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया था जिसके फलस्वरूप जापान सरकार को चीन में हस्तक्षेप करने का अवसर मिल गया था। जापान सरकार ने युआन को चेतावनी दी कि वह जापानियों की हत्या की क्षतिपूर्ति दे । युआन को इसे स्वीकार करना पड़ा और साथ में जापान को पाँच रेल मार्ग बनाने की भी अनुमति देनी पड़ी। इसके बाद जापानी राजदूत ने पैकिंग में 1915 को युआन के सामने 21 मांगों का एक पत्र प्रस्तुत किया। कीटन ने लिखा है "जापान सरकार ने इन मांगों को सीधे चीनी राष्ट्रपति के सम्मुख रखा।" इतना ही नही जिस कागज पर ये मांगें लिखी हुई थी उस पर मशीनगनों और विध्वंसक पनडुब्बीयों आदि के चित्र भी अंकित थे।" इन मांगों को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है ।

1. शांतुग के संबंध में जापान और जर्मनी जो कुछ भी निर्णय करें वह चीन को स्वीकार होगा। चीन इस प्रदेश में किसी देश को कोई पट्टा या अधिकार नही देगा और जापान को रेल मार्ग बनाने और बन्दरगाहो पर खुला व्यापार करने की स्वतंत्रता होगी।

2. दक्षणी मंचूरिया और आन्तरिक मंगोलिया के प्रदेश में जापान के रेल मार्गो तथा बंदरगाहों के पट्टी की अवधि 99 वर्ष तक कर दी जायेगी ।

3. चीन की हानयेपिग जो कि लोहे और कोयले का कम करने वाली सबसे बड़ी कम्पनी है। चीन और जापान दोनों के संयुक्त नियंत्रण में रहना और उसे यानतसी की नदी की घाटी में काम करने का पूर्ण अधिकर होगा।

4. चीन जापान को छोड़कर किसी अन्य देश को अपने समुद्र तट पर कोई बन्दरगाह खड़ी या द्वीप पट्टे पर नही देगा।

5. इस भाग में जापान के नियंत्रण संबंधी निम्नलिखित सात मांगे थी-

(अ) चीन सरकार को राजनीतिक, आर्थिक और सेनिक क्षेत्र में जापानी सलाहकार रखने होंगे।

(ब) चीन अपने आंतरिक प्रदेश में हस्पतालों, मन्दिरों तथा स्कूलों को स्थापित होने देगा।

(स) कुछ विशेष क्षेत्रों में जहां चीनी जापानियों में संघर्ष हो चुके है चीन की पुलिस जापान और उसके संयुक्त नियंत्रण में रहेगी।

(द) चीन जापान से पचास प्रतिशत के लगभग युद्ध का सामान खरीदेगा या जापानी विशेषज्ञों द्वारा युद्ध का सामान बनाने वाले कारखानों को चलायेगा ।

(य) दक्षिणी चीन में जापान को रेल मार्ग बनाने की अनुमति होगी ।

(र) चीन में जापानी धर्म प्रचारकों को अपना प्रचार करने की पूरी स्वतंत्रता होगी ।

(ल) चीन फुकीयांग को जापान का प्रभाव क्षेत्र स्वीकार करेगा । इन मांगों के संबंध में 1915 को चीन और जापान के मध्य एक संधि हुई इस संधि के अनुसार जापान के साम्राज्यवादी विस्तार में काफी वृद्धि हो गयी और पूर्वी एशिया में जापान को अपनी मनमानी करने की पूरी छूट मिल गयी । यही नहीं 1917 के शुरू में इंगलैण्ड और फ्रान्स ने जापान को गुप्त आसवासन दे दिया कि वह शांति सम्मेलन में जापान की सफलताओं को मजबूत बनाने का समर्थन करेगा।

7.3 सम्मेलन के लिए जिम्मेदार तत्व

वाशिंगटन सम्मेलन को बुलाये जाने का कारण उपरोक्त परिस्थितियाँ थी इसके बुलाये जाने में मुख्यत: अमरीका का स्वार्थ था । युद्ध के पश्चात स्तर पूर्व में जापान सबसे महान नौसैनिक शक्ति बन गया। रूस और जर्मनी के कमजोर हो जाने के कारण जापान के विरुद्ध कोई भी शक्ति संतुलन नही बचा था चीन पूरी तरह से जापान की दया पर था। इतिहासकार लोतोरेत का यहां तक कहना है कि अमरीका और जापान में इस हद तक कटु भावना पैदा हो चुकी थी कि युद्ध की संभावना बन गयी थी परन्तु दोनों के स्वार्थ में ये था कि युद्ध को टाला जाये। रूस जापान युद्ध के बाद अमरीका जापान की महत्वाकांक्षाओं को रोक रहा था। अमरीका खुलाद्वार तथा समान अवसर की नीतियों में विश्वास करता था। वह चीन की स्वतंत्रता का हामी था। इन्हीं सामान्य सिद्धांतों से प्रेरित होकर अमरीका ने जापान को मनचूरिया में रोकने का प्रयास किया, चीन के विरुद्ध जापान की 21 मांगो पर अपनी शंका प्रगट की और शानतुर्म प्रदेश में भी जापान की पूर्ण अभिलाषाओं को संतुष्ट नही होने दिया। पूर्वी साइबेरिया में जापान को अमरीका के विरोध के कारण सफलता नही मिली थी। पैरिस सम्मेलन में जातिवाद को लेकर मतभेद था। अमेराका में जापानी नागरिकों के साथ व्यवहार भी दोनों राष्ट्रों के बीच तनाव का कारण था भूमि तथा आबादी में जापान के किसी भी प्रकार के विस्तार को अमरीका रोक रहा था। दोनों राष्ट्रों के बीच नौसैनिक हथियारों में प्रतिस्पर्धा का विकास हो रहा था। ग्रेट ब्रिटेन को भी नौसेना की स्पर्धा से भय पैदा हो गया। ब्रिटेन यद्यपि युद्ध के पश्चात आर्थिक संकट अनुभव कर रहा था पर फिर भी वह अपनी नौसैनिक शक्ति का स्तर अमरीका के बराबर ही रखना चाहता था। लेकिन वह आंग्लजापान संधि से बाध्य था लेकिन यह संधि 1921 में समाप्त होने जा रही थी। और बहुत से कारणो से इस संधि के नवीनकरण की संभावना थी। यदि जापान और अमरीका में युद्ध होगा तो ब्रिटेन को विवश होकर युद्ध में भाग लेना पड़ता। इस संभावना से डर कर कनाडा आंग्ल जापान संधि के नवीनकरण को रोकना चाहता था। क्योंकि यदि आंग्ल अमरीका युद्ध होता तो केनाडा भी अपने बड़ी पड़ोसी राष्ट्र के साथ युद्ध में लपेट लिया जाता। इसलिए सूदुर पूर्व तथा प्रशान्त सागर में ग्रेट ब्रिटेन जापान अमरीका और अन्य संबंधित राज्य आंग्ल जापान संधि के स्थान पर एक सामान्य संधि से बेहतर मानने लगे इसके साथ अमरीका में रिपब्लिकन पार्टी के नेता जो उस समय सत्ता में थे और जिन्होने अमरीका को राष्ट्र संघ का सदस्य बनाने से रोका था वे अब इस प्रक्रिया के विरुद्ध नहीं थे जिससे अंर्तराष्ट्रीय समस्याओं का तो समाधान हो सके पर उसमें राष्ट्रसंघ का सहारा न लेना पड़े।

7.4 सम्मेलन की कार्यवाही

वाशिंगटन सम्मेलन नवम्बर 11,1921 को बुलाया गया । शस्त्रों में कमी करना प्रशान्त महासागर तथा सूदुर पूर्व की समस्याओं का हल करना इसके उद्देश्य थे । ब्रिटेन, फ्राँस, ईटली और जापान को निमंत्रण भेजे गये । क्योंकि अमरीका के साथ यही मित्र राष्ट्र थे जो कि प्रथम विश्व युद्ध से संबंधित थे । इनके अतिरिक्त चीन, बैल्जियम, नीदरलैण्ड पुर्तगाल को भी प्रशान्त महासागर और सुदुर पूर्व की समस्याओं पर विचार विमर्श के लिये बुलाया गया था। रूस को जानबूझ कर आमंत्रित नही किया गया क्योंकि वहां की साम्यवादी सरकारी अमरीका को पसन्द नही थी। जापान ने भी देर से निमंत्रण को स्वीकार किया था। जिसमें ये शर्त रखी गयी थी उन विषयों पर विचार विमर्श न हो जिनपर संबंध कुछ विशेष शक्तियों के साथ है तथा वह विषय भी नही उठाये जाये जो निश्चित हो चुके है। इस शर्त के अनुसार जापान 21 मांगे शान्तुंग, साईबेरिया जैसे विषयों के सम्मेलन में नहीं लाना चाहता है। जापान इस प्रकार की भी चेतावनी दे रहा था कि उसके कायों और उपलब्धियों पर पुनर्विचार नही होना चाहिए। क्योंकि उसे डर था कि अमरीका जो स्पष्ट रूप से उसके विरुद्ध था वह सम्मेलन का अपनी राजधानी में लाभ उठाकर उस पर दबाव डालेगा। लेकिन जापान निमंत्रण का विरोध भी नही कर सकता था क्योंकि ऐसा करने से युद्ध की संभावना थी । जिसमें ग्रेट ब्रिटेन और अमरीका उसके विरुद्ध हो सकते थे। इस तरह से अमरीका की कूटनीति ने उसे कठिन परिस्थिति में डाल दिया था।

वाशिंगटन सम्मेलन के दो भाग थे। पाँच शक्तियाँ अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, जापान, फ़्रांस और इटली नौ सेना निरस्त्रीकरण के संबंध में मिले। सभी नौ शक्तियों ने प्रशान्त महसागर और सुदूर पूर्व पर विचार विमर्श किया। अमरीका के राज्य सचिव ह्ग्स ने सभी प्रतिनिधियों तथा विश्व को अपने नौ सेनिक निरस्त्रीकरण योजना से अचंभित कर दिया। इस योजना के अनुसार बड़े जहाजों के निर्माण को समाप्त कर दिया गया। यदि ऐसे जहाज प्रयोग में या निर्मित हो रहे है तो अमरीका ग्रेट ब्रिटेन और जापान उन्हें नष्ट कर देंगे। इसमें संबंधित शक्तियों के मौजूदा नाविक शक्ति के अनुपात का भी ध्यान रखा जायेगा। इस तरह से ग्रेट ब्रिटेन, अमरीका और जपान की नाविक शक्ति का अनुपात 5-5-3 निश्चित किया गया था। सभी शक्तियों ने सिद्धान्त रूप से इस प्रस्ताव को मान लिया लेकिन जापान कुछ समय तक इसमें परिवर्तन चाहता था वह अपना अनुपात अधिक चाहता था परन्तु उसने अंत में इसी अनुपात से मान लिया इसके बाद इटली और फ़्रांस का अनुपात 1.75 निश्चित किया गया। इस तरह से सभी राष्ट्र नौ सेना के तत्कालिक स्तर को कायम रखना चाहते थे । अगर नौ सेना के स्तर में यथास्थिति बनी रहे तो सबके हित में अच्छा हो सकता था। इस प्रकार से अमरीका नाविक शक्ति में यथा स्थिति बनाये रखने का समर्थक था।

नौ सेना निरस्त्रीकरण का एक परिणाम था प्रशान्त महासागर के द्वीपों की किलेबंदी । जापान ने इस बात पर बल दिया कि यदि ब्रिटेन और अमरीका की तुलना में उसकी नौ सेना कम कर दी जाती है तो उसे यह विश्वास दिलाया जाये कि ये शक्तियाँ नाविक अड्डे नही बनायेगी क्योंकि वे बेहतर नाविक शक्ति का प्रयोग जापान के विरुद्ध कर सकते है। इस तरह से तीनों राज्यों ने निर्णय लिया कि वह प्रशान्त महासागर के अपने द्वीपों में कोई नई किले बंदी या नये नाविक अड्डे नही बनायेंगे। अमरीका को हवाई, पनामा नहर की द्वीपों, अलास्का के

बारे में छूट दी गई इसी तरह से ब्रिटेन को भी सिंगापुर में नाविक अड्डा बनाने की छूट दी गई। इसी तरह से कनाडा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलेण्ड के पास के द्वीपों की किलेबंदी पर भी मनाही नही की गई।

वाशिंगटन सम्मेलन की इस किलेबंदी और सेनिक अड्डे के नियंत्रण के करण जापान पर पश्चिम प्रशान्त महासागर से आक्रमण नहीं किया जा सकता था । अधिक से अधिक उस पर सफलता पूर्ण आक्रमण तभी किया जा सकता था जबकि उससे तीन गुनी या चार गुनी नाविक शक्ति उस पर आक्रमण करें यहां तक कि ग्रेट ब्रिटेन और अमरीका की संयुक्त नौसेना भी ऐसे आक्रमण की चुनौती को स्वीकार नही कर सकती थी।

दूसरी तरफ ब्रिटिश साम्राज्य और अमरीका को इस समझौते के द्वारा जापान के आक्रमण से सुरक्षा मिली इस समझौते के कारण जापान, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, कनाडा, मलाया, हवाई द्वीप और अमरीका और कुछ हद तक फिलीफाइन्स के लिये खतरा साबित नही हो सकता था। सिंगापुर और हवाई में ब्रिटिश साम्राज्य और अमरीका को अलग-अलग किले बंदी की छूट से अपने प्रदेशों में संभावित जापानी आक्रमण के विरुद्ध मजबूत अड्डे बनाने का मौका मिल गया इस तरह से सभी तीन शक्तियों को एक दूसरे के विरुद्ध आक्रमण से बचाव मिल गया। जैसे अमरीका और ब्रिटिश साम्राज्य को जापान से और जापान को दोनों राष्ट्रों से। ये सुरक्षात्मक उपाय इस समझौते की अवधिकाल तक चलते रहे जब समझौता समाप्त कर दिया गया तभी जापान दूसरों के लिये खतरा सिद्ध हुआ।

नाविक निरस्त्रीकरण और प्रशांत महासागर के द्वीपों में किलेबंदी संबंधी शर्तों पर पाँच शक्तियों के द्वारा सन्धि पर हस्ताक्षर किये गये। जिसमें ब्रिटेन, अमरीका, जापान, इटली और फ्रान्स सम्मिलित थे। ये संधि 1936 तक लागू होना निश्चित किया गया। इस संधि के साथ पाँच राष्ट्रों ने एक और संधि भी जोड़ दी जिसके अनुसार पनडुब्बबियों पर कुछ हद तक रोक लगायी गयी तथा युद्ध के समय नशीली गैसों के प्रयोग को भी रोका गया।

वाशिंगटन सम्मेलन में आंग्ल-जापान संधि एक समस्या बन गया। जापान को डर था कि उसके बिना वह अलग कर दिये जायेंगे और उन्हें संभावित आंग्ल अमरीका संगठन के दबाव का सामना करना पड़ेगा। ग्रेट ब्रिटेन आंग्ल जापान संधि के रूप में था क्योकि इससे वह आर्थिक रूप से जापान के कार्यो पर नियंत्रण कर सकता था। आस्ट्रेलिया भी इसे चाहता था क्योंकि इससे उसको जापान से बचाव हो सकता था। कनाडा और अमरीका इसके विरुद्ध थे। एक प्रस्ताव यह आया था कि अमरीका इस संधि का तीसरा राष्ट्र बन जाये अमरीका का सचिव हग्सरूट-ताका हीरा संधि से मिलती जुलती संधि चाहता था। जो कि 1908 में हुई थी जिसके अनुसार जापान और अमरीका ने निश्चित किया था कि पूर्वी एशिया और प्रशान्त महासागर में एक दूसरे के प्रदेशों का आदर करेंगे और यथा-स्थिति को बनाये रखेंगे, चीन में खुले द्वार की नीति अपनायेंगे और चीन की स्वतंत्रता और सार्वभौमिकता को कायम रखेंगे । परिणामस्वरूप जो संधि सामने आयी वह भिन्न प्रकार की इच्छओं का मिश्रित तथा परिवर्तित रूप था। आंग्ल जापान संधि का नवीनीकरण नही किया गया। इसके स्थान पर चार राष्ट्रों की संधि पर हस्ताक्षर किये गये इसके अनुसार अमरीका, ब्रिटेन, फ्रान्स और जापान ने तय किया कि वे प्रशान्त महासागर अपने अधिकारों का आदर करेंगे और उनमें से किसी में कोई विवाद पैदा हो

जाता है और वह कूटनीति से तय नही होता तो वह दूसरी शक्तियों ले निमंत्रित करेंगे जो कि सम्मेलन में उस विवाद का हल निकलेंगे इस संधि का अवधि काल 10 वर्ष का निश्चित किया गया।

अमरीका वाशिंगटन सम्मेलन के माध्यम से चीन में जापान के विस्तार को रोकने पर आमादा था। अमरीका ने जापान से ये भी विश्वास प्राप्त कर लिया कि वह रूस के भू-भाग पर आक्रमण नही करेगा और शीघ्र ही साइबेरिया तथा सखालीन से अपनी सेनाएं हटा लेगा।

7.5 वाशिंगटन सम्मेलन का मूल्यांकन

वाशिंगटन सम्मेलन ने सर्वप्रथम सूदुर पूर्व में तनाव से दूर किया विशेष तौर से जापान और चीन के बीच और अमरीका और जापान के बीच। फिर भी यह संधि अन्य अंतर्राष्ट्रीय संधियों की तरह हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों के पारंपरिक विश्वास पर आधारित थी । नाविक दृष्टि से जापान अपने द्वीपो में करीबन पूर्णतया सुरक्षित था और चीन के तट पर उसका पूर्ण नियंत्रण था अगर जापान संधि के नियमों को मानता रहे तब शांति बनी रह सकती थी ।

अगर जापानसंधि की परवाह न करके आक्रमण कारी बन जाये तो उसे रोकना बड़ा टेढ़ा और खर्चीला था। इसके अतिरिक्त अमरीका ने वाशिंगटन सम्मेलन के द्वारा सूदुर पूर्व मे अपने नेतृत्व और जिम्मेदारियों से पहले से कही अधिक बढ़ा लिया था। इस सम्मेलन को बुलाकर अमरीका ने सूदुर पूर्व में अपना जिन जिम्मेदारियों को बढ़ा लिया था वे पहले की नीतियों का ही परिणाम थी । यद्यपि कागज पर अमरीका की ज़िम्मेदारी सूदुर पूर्व में शांति बनाये रखने के लिये और जापान के विस्तार को रोकने के लिये दूसरे राष्ट्रों की तरह थी । और साथ ही लिखित रूप से चीन की रक्षा के लिये तथा कर सूदुरपूर्व के प्रदेशों की रक्षा के लिये वह जिम्मेदार न था। परंतु कार्यरूप में यथा स्थिति बनाये रखने के लिये तथा सूदुर पूर्व में जापान के विस्तार को रोकने के लिये और पश्चिमी प्रशान्त महासागर में जापान पर रोक लगाने के लिये वह चीन और इसकी तरह प्रथम पंक्ति वाले राष्ट्रों में था।

यद्यपि वाशिंगटन सम्मेलन में काफी वर्षो तक प्रशान्त महासागर में तनाव को कम किया युद्ध को इस सागर में टाला फिर भी इसने अमरीका को कर सुदुर पूर्व के मामले में गहराई तक खीच लिया और इस तरह से वह एक कदम बन गया। जिससे 1941 में अमरीका और जापान एक दूसरे के आमने सामने खड़े हो गये। निरस्त्रीकरण के क्षेत्र में पहली सफलता वाशिंगटन सम्मेलन में मिली। नाविक क्षेत्रों में शास्त्रों की कमी का यह प्रथम प्रयास था। वाशिंगटन सम्मेलन को जितनी सफलता मिली उतनी सफलता किसी दूसरे निरस्त्रीकरण सम्मेलन को नहीं मिली थी। इस सम्मेलन की सफलता का रहस्य यह था इसमें भाग लेने वाले देशों को नाविक स्पर्धा को जारी रखना किसी राजनीतिक उद्देश्य को पूरा करना नही था। सभी नौसेना के तत्कालीन स्तर को कायम रखते हुए अपनी राजनीतिक और आर्थिक संतुलन को बनाये रखना चाहते थे। अगर नौ सेना के स्तर में यथास्थिति बनी रहे तो सबके हित में अच्छा हो सकता था। वाशिंग्टन सम्मेलन से यह लाभ अवश्य हुआ कि नौ सेना में वृद्धि करने की जो होड़ चल रही थी वह कम से कम 10 साल तक रुक गयी। बड़े जहाजों पर होने वाले भारी खर्च को 10 साल तक के लिये रोक दिया गया अन्य प्रकार के जहाजों के संबंध में कोई समझौता नही होने का अर्थ यह था कि उनके संबंध में प्रतिस्पर्धा चलती रही जिससे सुरक्षा की भावना

बढ़ने की अपेक्षा कम हो गयी। ब्रिटेन छोटे-छोटे जंगी जहाज बनता रहा। अन्य राष्ट्रों को उससे यह सख्त शिकायत थी। उधर ब्रिटेन की शिकायत थी कि फ्रांस सेनिक जहाज बनाने की ओर उठा रहा है। इसके अतिरिक्त वाशिंगटन समझौते में दो और कठिनाईयों थी वाशिंगटन सम्मेलन में फ्रांस और इटली की नाविक शक्ति में समानता स्वीकार कर ली गयी परन्तु फ्रान्स को इस निर्णय से आपत्ति थी। उसका कहना था कि इटली को तो केवल भूमध्य सागर में अपनी रक्षा करनी है परंतु स्वयं स्वयं फ्रांस तो भूमध्य सागर के अतिरिक्त उत्तरी सागर तथा अटलांटिक महसागर के तट की भी रक्षा करनी है। इस कारण फ्रांस की मांग थी कि उनकी नाविक शक्ति इटली की नाविक शक्ति से अधिक हो इस विषय पर भी कोई समझौता नही हो सकता। दूसरी कठिनाई जापान के संबंध में थी। उसने अमरीका और ब्रिटेन के दबाव के कारण अपनी जहाजों में कमी स्वीकार कर ली थी। इसके अतिरिक्त उसे चीन को भी अधिक राजनीतिक सुविधायें देनी पड़ी। उदाहरण के लिये शान्तुग प्रायद्वीप से जापान ने चीन को लौटा देने का वचन दिया। जापान से अपनी महत्वाकांछाओं पर अंकुश लगाने के लिये बाध्य होना पड़ा था। प्रोफेसर कार के अनुसार जापान इसमें अपनी प्रतिष्ठा की हानि समझता है और आगे चलकर इस समझौते को भंग करने का प्रयत्न करना उसके लिये स्वाभाविक था।

वाशिंगटन सम्मेलन को शानदार सफलता माना गया है। यह मूल्यांकन आधार हीन भी नही है इस सम्मेलन से प्रशान्त महासागर में युद्ध से पूर्व का संतुलन लाया गया। आंग्ल अमरीका के दबाव तथा विश्व जनमत के प्रभाव में आकर जापान ने यद्यपि खुली हार स्वीकार नहीं की तो कम से कम अपनी महत्वाकांछाओं पर गंभीर नियंत्रण लगाना पड़ा। जापान को मजबूर होकर चीन से प्राप्त युद्ध के एक मात्र लाभ त्याग देने पड़े जापान, ब्रिटेन और अमरीका के बराबर नाविक शक्ति की मांग नही रख सकता जापान की अमरीका और ब्रिटेन की नाविक 70 प्रतिशत टन की मांग 60 प्रतिशत कर दी गयी। चीन की सार्वभौमिकता और प्रशांत महासागर ने आंग्ल अमरीका की सर्वोच्चता को जो जापान से खतरा था वह हट गया फिर भी वाशिंगटन सम्मेलन से जो परिस्थिति पैदा हुई थी वह असुरक्षित थी। क्योंकि ये जापान की एशिया महाद्वीप से साम्राज्यवादी नीति के त्याग पर निर्भर थी कभी ना कभी जापान अपनी शक्ति से प्रेरित होकर वाशिंगटन सम्मेलन में अपनी खोई हुई शान को प्राप्त करने की कोशिश करता। सुदूर पूर्व में आधार भूत प्रश्न यह बना रहा कि आंग्ल अमरीका तथा जापान में से किस का प्रभाव अधिक रहेगा। लेकिन कम से कम 10 वर्षो तक इस प्रश्न का फैसला टल गया।

7.6 अभ्यास कार्य

1. वाशिंगटन सम्मेलन पर एक संक्षिप्त लेख लिखो।

2. वाशिंगटन सम्मेलन की मुख्य सफलतायें क्या थी? क्या इसने जापानी साम्राज्यवाद को कायम रखने में सफलता प्राप्त हुई?

3. वाशिंगटन सम्मेलन में किये गये मुख्य निर्णयों का उल्लेख कीजिये।

4. आपके विचार से वाशिंगटन सम्मेलन के निर्णयों ने सूदुर पूर्व में शक्ति संतुलन को कहाँ तक प्रभावित किया?

5. 1921 -22 के वाशिंगटन सम्मेलन के कार्यो का मूल्यांकन कीजिये।

6. वाशिंगटन सम्मेलन में निरस्त्रीकरण की समस्या का हल कैसे ढूंढा गया।

7.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Western civilizations and their history and culture by Edward Mcnall Burns.
2. International relations between the two words wars 1919-1939 by E.H. Carr
3. A Short history of the fareast by Latourette.
4. A dictionary of modern history by A.W. Palmer
5. International relations by Palmer and Perkins
6. अंतर्राष्ट्रीय संबंध,- दीनानाथ वर्मा
7. Europe since 1915 by Hazen.
8. A history of modern times by Ketelby

इकाई-8

नवीन टर्की का जन्म-मुस्तफा कमाल पाशा

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 लोसान की संधि

8.3 कमाल पाशा का प्रारंभिक जीवन

8.4 टर्की गणराज्य की घोषणा

8.5 कमाल पाशा के विचार एवं सुधार

8.6 गणतंत्रवाद

8.7 राष्ट्रवाद

8.8 अन्य सुधार

8.8.1 शिक्षा संबंधी

8.8.2 टर्की के नये इतिहास की परिकल्पना

8.8.3 वेशभूषा संबंधी

8.8.4 भाषा लिपि संबंधी

8.8.5 स्त्रियों की स्थिति संबंधी

8.8.6 न्याय व्याख्या संबंधी

8.9 आर्थिक सुधार

8.10 अन्य प्रमुख सुधार

8.11 कमालपाशा का मूल्यांकन

8.12 संभावित प्रश्न

8.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व की स्थिति का अवलोकन कराते हुए यह बताना है की पराजित टर्की के साथ मित्र राष्ट्रों ने जो सेव्र की संधि की थी उससे उपजे असन्तोष ने वहां राष्ट्रीयता का विकास किया । साथ ही इसके नतीजे में वहां राष्ट्रीय सरकार के प्रमुख कमाल पाशा के उदय उसके कार्यों एवं उपलब्धियों से अवगत कराना है। जिसके परिणामस्वरूप एक सशक्त टर्की का जन्म होता है।

8.1 प्रस्तावना

अपने उत्कर्ष काल में टर्की ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी जो तीन महाद्वीपों- एशिया, यूरोप और अफ्रीका में फैला हुआ था। एशिया के भागों में मेसोपोटामिया, ईरान एवं

अरब के अनेक भागों में टर्की का राज्य था तो यूरोप में बाल्कन प्रदेश एवं अफ्रीका में मिस्र टर्की राज्य का अंग था। इस विशाल एवं अव्यवस्थित साम्राज्य की रक्षा करने में टर्की के शासक असमर्थ थे। देखने में ऐसा महसूस होता था कि साम्राज्य काफी सुदृढ़ एवं शक्तिशाली है लेकिन हकीकत इसमें दूर थी । अव्यवस्था एवं अयोग्य नेतृत्व के कारण छोटे-छोटे प्रदेश साम्राज्य से अलग होते रहते थे और यूरोपीय शक्तियों को उसके आन्तरिक मामलों में दखल देने का मौका मिलता रहता था। राजनीतिक अव्यवस्था के साथ अर्थव्यवस्था भी दयनीय अवस्था में थी इससे सुल्तान से दूसरे राष्ट्रों से ऋण लेना पड़ता था जिससे वहां विदेशी पूंजी के साथ साथ -विदेशी प्रभाव भी जमने लगा एवं वे षडयंत्रों मे लिप्त रहने लगे। ऋण न चुकने के कारण टर्की उन राज्यों को अपना कोई भू-भाग दे दिया करता था।

सन 1878 ई. की बर्लिन संधि टर्की के लिए कुठाराघात साबित हुई जिसके करण एक विशाल शब्द से टर्की को हाथ धोना पड़ा। इस संधि के बाद से ही यह महसूस किया जाने लगा कि टर्की में सुधार एवं परिवर्तन जरूरी है इससे वहां दुनिया के अन्य देशों के समान राष्ट्रीय भावना का विकास होने लगा। टर्की की जनता इन व्यवस्थाओं में सुधार करके ही इस पतित अवस्था से आजाद हो सकती थी लेकिन वहां के शासक सुधारों के पक्ष में नहीं थे। तत्कालीन शासक ने 'युवा तुर्को' के विचारों को नजर अन्दाज कर दिया लेकिन अधिक समय तक शासक इन राष्ट्रीय विचारो को दबा नही सका इसी कारण वहां 'युवा तुर्क' क्रांति हुई जिसने सुधारों की व्यापक भूमिका बनाई एवं सुजान के नया संविधान लागू करने को मजबूर किया। इन युवा तुर्कों को यह भय था कि कहीं ओटोमन साम्राज्य नष्ट न हो जाये क्योंकि सुलतान की नीतियां एवं यूरोपीय दशा का हस्तक्षेप टर्की के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा कर रहे थे। इसी समय स्तांबूल में एक विद्रोह हुआ जिसको कुचलने के बाद सुल्तान को पदत्याग करना पड़ा। तुर्की मे अनेक क्रांतिकारी दलों की स्थापना की गई थी जिसमें दमिश्क का "फादरलैण्ड एण्ड फ्रीडम सोसाइटी" मुख्य थी एवं इसे मुस्तफा कमाल पाशा का सहयोग प्राप्त था।

प्रथम विश्व युद्ध के बादल जब दुनिया पर छाने लगे तो तुर्की सरकार के एक समूह ने जिसका नेता युद्ध मंत्री अनवर पाशा था, ने तुर्की सरकार को यह भय दिखाया कि मित्र राष्ट्र औटोमन साम्राज्य को हड़पना चाहते है। उसका यह मानना था कि यदि टर्की अपना अस्तित्व चाहता है तो उसे जर्मनी के साथ मित्रता कर लेनी चाहिये। इसी वजह से अनवर पाशा ने जर्मनी जाकर 2 अग. 1914 को बर्लिन में एक गुप्त संधि की जिसके आधार पर टर्की ने धूरी राष्ट्रों का साथ दिया। युद्ध मे प्रवेश करके टर्की ने अपने विनाश को न्यौता दे डाला। युद्ध मे पराजित होने पर मित्र राष्ट्रों ने टर्की के साथ सेव्र की संधि की जिसके अनुसार ओटोमन साम्राज्य घटकर स्ताम्बूल एवं थ्रेस तक ही सीमित रह गया । टर्की कें देशभक्तों ने इस आरोपित एवं अपमानजनक संधि का एक स्वर में विरोध किया। जिनका नेतृत्व मुस्तफा कमाल पाशा कर रहा था। विरोध इतना जबरदस्त था कि 24 जुलाई 1923 में मित्र राष्ट्रों को टर्की के साथ एक अन्य संधि करनी पड़ी जो लोसान की संधि कहलाती है।

8.2 लोसान की संधि

सेव्र की संधि को कमालपाशा की रिपब्लिकन सरकार ने अस्वीकार कर दिया था इसलिए पाशा इसे कोई अहमियत नहीं देता था सेव्र की संधि की शर्तों का उल्लंघन करते हुए

इटली एवं यूनान ने जिन, प्रदेशों पर अपना कब्जा जमा लिया था वे सभी क्षेत्र पुन : टर्की के पास आ गये। इस स्थिति में 24 जुलाई 1923 में मित्र राष्ट्रों ने टर्की के साथ लोसान की संधि की जिस पर ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, जापान, अमेरिका, रूमानिया, यूगोस्लाविया, रूस, टर्की एवं यूनान के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये। जिसके अनुसार (अ) थ्रेस के सम्पूर्ण पूर्वी भाग, स्मर्ना, अनातोलिया, अडेलिया, सिलिसिया एवं कुर्दिस्तान इत्यादि प्रदेशों पर पुन : टर्की का आधिपत्य मान लिया गया। (ब) एजियन सागर में इम्ब्रास, टेनेडास और रेबिट द्वीपों पर टर्की का अधिकार बना रहा, डाडेक्नीज एवं केसटेलोरिजो पर इटली एवं शेष पर यूनान का अधिकार माना गया। (स) टर्की ने लिबिया, मिस्त्र, सूडान, फिलीस्तीन, ईराक, सीरिया एवं अन्य अरब देशों पर अपना आधिपत्य छोड़ दिया। (द) टर्की से जो हर्जाना सेव्र की संधि द्वारा लेना था वह खत्म कर दिया गया एवं उसकी थल, जल एवं वायु सेना को स्वतंत्र कर दिया।

लोसान की संधि कमाल पाशा की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि था। वास्तव में किसी पराजित राष्ट्र द्वारा इतनी सम्मानजनक संधि पहले कभी नही की गई थी। मुस्तफा कमाल पाशा का वास्तविक उद्देश्य टर्की मेँ एक राष्ट्रीय राज्य की स्थापना करना था।

8.3 कमाल पाशा का आरंभिक जीवन

सेलोनिका के एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार मे कपाल पाशा का जन्म सन् 1881 ई. में हुआ था। प्रारंभ से ही इसका रूझान सेनिक शिक्षा की और था इसलिए उसने सेनिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद सेनिक महाविद्यालय से सेनिक अधिकारी का प्रमाण पत्र प्राप्त किया। उसमें सेनिक प्रतिभा थी ही इसके साथ-साथ वह फ्रांस के क्रान्तिकारी साहित्य से भी प्रभावित था एवं तानाशाही शासन का घोर विरोधी था। उसने क्रान्तिकरियों के सध मिलकर "फादरलैण्ड एण्ड फ्रीडम सोसाइटी" का पुर्नगठन किया सन् 1911-12 में उसने टर्की-इटली युद्ध मेँ अपनी रण कुशलता का परिचय दिया एवं सन् 1912- 13 के बाल्कन युद्धों में भी उसने ख्याति प्राप्त की। हालांकि उसने प्रथम विश्व युद्ध में टर्की के प्रवेश का विरोध किया था लेकिन फिर भी उसे 19वीं बटालियन का कमाण्डर बनाकर भेजा गया जहां उसने निष्ठा एवं लगन से अपने कार्य को किया। गेलीपोली के युद्ध में उसके कुशल नेतृत्व के कारण ही मित्र राष्ट्रों की सेना को पीछे हटना पड़ा। सन् 1916 में रूसी सेना के विरुद्ध उसने एक मात्र सफलता प्राप्त की। जिसके कारण टर्की सरकार ने उसे सेना-प्रमुख बनाया एवं पाशा की उपाधि से अलंकृत किया। सन् 1918 में जब टर्की मित्र राष्ट्रों से संधि की भीख मांग रहा था तब कपाल पाशा ही एक ऐसा सेनानायक था जिसकी प्रसिद्धि कम नही थी। जब 1919 में मित्र राष्ट्रों की सेनाएं कोन्सटेंटिनोपल पहुंच गई और सुल्तान मुहम्मद षष्ठम अपनी गद्दी बचाये रखने हेतु मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध कोई खर्च नही करना चाहता था, तब कपाल पाशा को बड़ी ठेस लगी ।

इसी बीच मित्र राष्ट्रों की सहमति से उसे पूर्वी अनातोलिया में तृतीय सेना का इस्पेक्टर-जनरल बनाकर भेजा जहां उसने राष्ट्रवादी तत्वो को संगठित कर उन्हें राष्ट्र की स्वतन्त्रता एवं अखंडता के लिए कटिबद्ध किया। उसकी इन गतिविधियों से उसे अपने इस पद से हाथ धोना पड़ा। जुलाई 1919 में "राष्ट्रीय अधिकारों की रक्षा हेतु पूर्वी प्रान्तों की परिषद का अधिवेशन एर्जरुम में कपालपाशा की अध्यक्षता में हुआ जिसमें अनेक प्रस्ताव पारित किये

गये। सित. 1919 मे वह राष्ट्रीय सम्मेलन का अध्यक्ष बना जिसमें राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से सुल्तान के पास कुछ माँगे भेजी जिनके रद्द करने पर राष्ट्रवादिर्यो ने राजधानी में तार एवं टेलीफोन सेवाएं ठप कर दी। परिणामस्वरूप सुल्तान ने प्रतिनिधि सभा के चुनाव कराने के आदेश दिये जिसमें कपालपाशा के राष्ट्रवादी दल को बहुमत मिला। लेकिन परिस्थितियों वश-पाशा उसके अधिवेशन में नही गया। परिस्थतियां ऐसी बदली कि ब्रिटिश सरकार ने राजधानी पर अपना आधिपत्य जमा लिया जिससे पाशा के पक्ष को बल मिला। अप्रैल 1920 मे, कपालपाशा ने अपनी अध्यक्षता में तुर्की की महान राष्ट्रीय सभा का प्रथम अधिवेशन बुलाया। सभा ने "सुल्तान-खलीफा के प्रभाव सें मुक्त होने तक" कपालपाशा से शासनाध्यक्ष एवं सर्वोच्च सेनापति के अधिकारों से विभूषित किया एवं नवीन संविधान तैयार करने हेतु एक समिति गठित की।

सेव्र की संधि और ब्रिटिश सहायता से यूनानी हमले ने राष्ट्रवादी पक्ष को अधिक संगठित किया। कपालपाशा ने एक ओर तो सोवियत रूस से मित्रता करके सहयोग एवं सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया दूसरी तरफ फ़्रांस, ब्रिटेन एवं इटली के आपसी मतभेदों से भी लाभ उठाने की चेष्टा की। फर. मार्च. 1921 में मित्र राष्ट्रों के एक सम्मेलन में टर्की को सन्तुष्ट करने हेतु सेव्र की संधि में कुछ संशोधन प्रस्तावित किये लेकिन पाशा ने उन्हें नही स्वीकारा। इसके बाद ब्रिटेन, फ्रांस, इटली ने यूनान-टर्की युद्ध में, तटस्थ रहने की घोषणा कर दी एवं 16 मार्च, 1921 में रूस एवं राष्ट्रवादियौं के बीच मास्को की संधि हुई। जुलाई 1921 में राष्ट्रीय महासभा ने कपालपाशा को मुख्य सेनापति नियुक्त किया ।उसने सकारिया के युद्ध (सित. 1921) में यूनानियों को परास्त कर पीछे हटने पर मजबूर किया इससे खुश होकर राष्ट्रीय महासभा ने कपाल पाशा को सेना का सर्वोच्च मार्शल का पद एवं 'गाजी' की उपाधि प्रदान की। अंकारा की संधि द्वारा फ़्रांस सरकार ने राष्ट्रवादी सरकार को मान्यता दे दी। सित. 1922 में टर्की सेनाओं ने स्मर्ना पर अधिकर कर लिया जिससे अनातोलिया पर ग्रीक आधिपत्य समाप्त हो गया। कपाल-पाशा ने थ्रेस से यूनानियों को निकालनें हेतु दार्दनलीज के टतरथ क्षेत्र सें होकर टर्की सेनाओं को बढ़ने का आदेश दिया जिसका फ़्रांस, इटली ने कोई विरोध नही किया लेकिन ब्रिटेन के साथ युद्ध की आशंका हो गई थी लेकिन दोनो राष्ट्रों ने आपसी सहमति से युद्ध विराम कर लिया एवं अक्टू 1922 में मुदानियां में दोनों पक्षों में समझौता हो गया जिसके अनुसार पूर्वी प्रेस एवं दार्दनलीज के क्षेत्र पर राष्ट्रवादियों का अधिकार हो गया।

लोसान की संधि के बाद राष्ट्रीय महासभा ने कोन्सर्टेटिनोपल के स्थान पर अंकारा को अपनी राजधानी बनाया। इसके बाद कपाल पाशा ने टर्की को गणतंत्र राज्य बनाना चाहा और अक्टू 1923 मे राष्ट्रीय महासभा ने टर्की को गणतंत्र बनाने का प्रस्ताव बहुमत से पास कर दिया इसके साथ ही कमाल पाशा को देश का पहला राष्ट्रपति बनाया जिसके तहत पाशा को विस्तृत अधिकार प्राप्त हुए। कमालपाशा ने टर्की को मध्यकालीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं से मुक्त करके पाश्चात्य सभ्यता पर आधारित एक शक्तिशाली एवं आधुनिक राष्ट्र बनाना चाहा। हलांकि उसने इस उद्देश्य को प्राप्त करनें के लिए अधिनायकवादी उपायों का सहारा लिया लेकिन उसका अधिनायकवाद हिटलर के अधिनायकवाद से सर्वथा भिन्न था उसनें धीरे-धीरे टर्की में

राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण सुधार करके टर्की का नवनिर्माण किया।

8.4 टर्की गणराज्य की घोषणा

लोसान की संधि के समय एवं उससे पूर्व ही टर्की में गणराज्य स्थापना की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी । मित्र राष्ट्र यह चाहते थे कि लोसान सम्मेलन में टर्की सुल्तान अपना प्रतिनिधि भेजे जिसका सीधा मतलब था-कमाल पाशा एवं उसके सहयोगियों की पराजय । कमालपाशा के अधिक सतर्क एवं योग्य होने के कारण उसने तत्काल राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन' बुलाया जिसमें टर्की सल्तनत को समाप्त (नव. 1922) कर दिया गया । इससे भयभीत होकर टर्की सुल्तान वहीदुद्दीन देश छोड़कर भाग गया । उसके स्थान पर उसके भतीजे अब्दुल मजीद को सुल्तान न बनाकर प्रथम एवं अन्तिम ओटोमन खलीफा बनाया। लेकिन खलीफा का यह पद भी अधिक समय तक नही रह सका। उसे 3 मार्च, 1924 को समाप्त कर दिया। इससें पूर्व मे टर्की को राष्ट्रीय महासभा ने गणतंत्र घोषित कर दिया था एवं उसका प्रथम राष्ट्रपति (29 अंक्टू.,1923) मुस्तफा कमाल पाशा को नियुक्त किया। 20 अप्रैल 1924 को टर्की में एक नया संविधान लागू किया गया जिसने इस्लाम को राज्य धर्म घोषित किया। लेकिन अप्रैल, 1928 में इस विशेष धारा को हटाने, से टर्की शुद्ध रूप से धर्म निर्पेक्ष राज्य बन गया।

8.5 कमाल पाशा के विचार एवं सुधार

टर्की में गणराज्य की घोषणा, खिलाफत का अंत एवं एक नवीन संविधान लागू हो जाने के बाद टर्की का कर्णधार कमाल पाशा चाहता था कि टर्की का नव-निर्माण किया जाये जिसका आधार पाश्चात्य विचार एवं सभ्यता हो। पाशा का अटूट विश्वास था कि पाश्चात्य विचारों एवं संस्कारों को अपनाकर ही नये सिरे से टर्की का निर्माण किया जा सकता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने में कमाल पाशा ने एक अत्यंत आश्चर्यजनक उदाहरण प्रस्तुत किया। वह साहस एवं दृढ़ निश्चय रखने वाला एक महान राष्ट्रवादी था। उसने विरोधियो के असहयोग के बावजूद भी अपने विचारों के अनुरूप जीवन के प्रत्येक पहलू से संबंधित अनेक सुधार किये।

प्रथम विश्व युद्ध एवं उसके बाद होने वाली घटनाओं ने टर्की की प्रशासनिक, आर्थिक एवं सेनिक संरचना को बुरी तरह से प्रभावित किया था । टर्की अब एक विशाल साम्राज्य न होकर एक छोटा सा राज्य रह गया था और अनेक गैर-टर्की प्रदेश उससे अलग होकर अपना अलग अस्तित्व बना चुके थे। इसके साथ ही वहां की सामाजिक प्रणाली भी बुरी तरह से प्रभावित हुई थी। विदेशी कर्ज के साथ कृषि एवं उद्योग भी अवनत अवस्था में थे। इन परीस्थितियों मे टर्की को एक नया स्वरूप प्रदान करके एक सशक्त राष्ट्र के रूप में उसे विकसित करना अत्यंत दुर्लभ था। इस आशय हेतु एक विस्तृत योजना की भी जरूरत थी।

कमाल पाशा ने अपने राजनैतिक विचारों को मुख्य रूप से छः भागों में विभाजित किया था-(i) गणतंत्रवाद, (ii) राष्ट्रवाद (iii) समानतावाद, (iv) नियंत्रित अर्थवाद (v) धर्मनिरपेक्षवाद (vi) क्रांतिवाद । इन्ही सिद्धान्तों के आधार पर एक प्रगतिशील गणतंत्र बनाना चाहता था। अपने इन्हीं लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु पाशा ने पूर्व में सुल्तान एवं खलीफा पदों की समाप्ति कर दी थी ।

8.6 गणतंत्रवाद

कमाल पाशा चाहता था कि टर्की में गणराज्य के साथ-साथ राजनैतिक समानता भी हो। इसलिए शदियों पुराने खिलाफत एवं सल्तनत के अस्तित्व को नष्ट कर जन. 20, 1921 में वैधानिक रूप से यह घोषणा की गई कि प्रभुसत्ता पूर्णरूपेण राष्ट्र में निहीत है। शासन तंत्र इस सिद्धांत पर आधारित है कि व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता एवं निदेशक है 29 अकटू., 1923 में टर्की को गणतंत्र घोषित कर दिया जिसका अध्यक्ष कपाल पाशा था1 टर्की गणराज्य का नवीन संविधान अप्रैल 20, 1924 के लागू किया गया जिसमें जनता की सम्प्रभुता को सर्वोच्च स्थान दिया गया राष्ट्रीय सभा के सदस्य जनप्रतीनिधि होते थे। कार्यपालिका की भी व्यवस्था की गई जो संसद के प्रति उत्तरदायी थी । नवीन संविधान मे नागरिर्को के मूल अधिकारों को स्थान देने के साथ-साथ व्यक्तिगत, राजनीतिक, आर्थिक अधिकारों एवं विचारों की स्वतंत्रता पर भी बल दिया गया था। प्रजातांत्रिक शासन की नींव रखा जाना टर्की के इतिहास की एक असाधारण घटना थी । टर्की के देश भक्त एवं राष्ट्रवादी इस हेतु सतत् आन्दोलन रत थे। लेकिन उन्हें आशातीत सफलता नही मिली थी लेकिन कमाल पाशा के नेतृत्व मे वहां पुरातन शासन व्यवस्था लुप्त होकर प्रजातंत्र शासन के रूप में सामने आई ।

8.7 राष्ट्रवाद

राष्ट्रवाद का अर्थ-राष्ट्रीय भावना, विदेशी हस्तक्षेप का विरोध, क्रांति व सुधारों के समर्थन से था। जिसकें संबंध में कमाल पाशा के अपने निजी विचार थे। राष्ट्रवाद के विकास हेतु वह देश का पश्चिमीकरण आवश्यक मानता था। टर्की का स्थान आधुनिक पश्चिमी राज्यों की श्रेणी में रखना कमाल का लाश था । यह तभी संभव हो सकता था जबकि प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं को दफना दिया जाये एव आधुनिक वातावरण के लिए विस्तृत सुधार किये जाये।

8.8 अन्य सुधार

कमाल पाशा के सुधारो का दायरा राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र तक ही सीमित नही था। वह समाज में, जनजीवन में व्यक्ति के दृष्टिकोण में स्थाई एवं दूरगामी परिवर्तन चाहता था। इस आशय हेतु पाशा ने अनेक राष्ट्रव्यापी सुधारों का अभियान चलाया जिनमें से प्रमुख सुधार निम्नांकित थे-

8.8.1 शिक्षा संबधी- उत्तम शिक्षा नागरिको में राष्ट्रीय भावना को विकसित करने हेतु अत्यन्त आवश्यक होती है। टर्की की तत्कालीन शिक्षा पद्धति धार्मिक थी जिस पर अंधविश्वास एव रूढ़िवादिता का गहरा प्रभाव था। कमालपाशा ने इन से पर एक नयन शिक्षा पद्धति लागू करके प्राथामिक शिक्षा निशुल्क एवं अनिवार्य कर दी । शिक्षण संस्थाओं का संगठन यूरोपीय ढंग से किया गया विदेशी (स्विस प्रोफेसर माल्के) शिक्षको ने विश्वविद्यालयों में अध्ययन की एक विस्तृत योजना पेश की । चिकित्सा महाविद्यालयों की स्थापना के साथ-साथ नये-नये विषयों का शिक्षण शुरू किया गया । बालचरों के संगठन, खेल-कूद, शारीरिक व्यायाम पर विशेष बल दिया गया । सही मायने में कमाल पाशा की सफलता का मुख्य रहस्य शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन ही था।

8.8.2 टर्की के नये इतिहास की परिकल्पना- टर्की परम्परा को ऐतिहासिक आधार देने से सर 1930 में ' टर्की इतिहास परिषद ' का गठन किया गया। इसके प्रथम अधिवेशन मे यह प्रस्ताव पारित किया गया कि टर्की जाति का आदि स्थान मध्य एशिया है जौ श्वेत वर्ण आर्य जाति है। मध्य एशिया से यह जाति निकलकर चीन, भारत एवं पश्चिमी एशिया मे फैल गई जहां उन्होंने अलग-अलग संस्कृतियों का विकास किया। इस सम्मेलन में यह फैसला भी किया गया कि प्राचीन सुमेर वासी टर्की जाति के थे। अनातोलिया टर्की का ही प्राचीन नाम है। इस सम्मेलन मे पारित सभी प्रस्तावों के इतिहास की पुस्तकों में शामिल करके समस्त शिक्षण संस्थाओं में पढ़ाया जाने लगे ।

8.8.3 वेशभूषा संबंधी सुधार - टर्की को पाश्चात्य वातावरण में ढालने हेतु कमाल पाशा वहां की पोशाक में भी परिवर्तन का इच्छुक था। इसलिए परंपरागत फैज टोपी एवं बुर्का के प्रयोग पर पाबन्दी लगा दी एवं इस आशय का नव 25, 1925 को एक कानून पास किया गया। यूरोपीय ढंग का टोप पहनना जरूरी कर दिया। इस कानून को पास करवाने में कमाल पाशा को काफी विरोध का सामना करना पड़ा लेकिन दृढ़ निश्चयी कमाल पाशा ने इन विरोधियो ने कानूनी अवहेलना करने पर सजाएं दी एवं उनके विद्रोहो को निर्ममतापूर्वक दबाया गया। कुर्द विद्रोह इस श्रृंखला में महत्वपूर्ण माना जाता है। जो उसकी धर्म विरोधी नीतियों से काफी अप्रसन्न थे। विद्रोहों के दबाकर नेताओं को मृत्युदंड दिया गया। इसके साथ ही कमाल पाशा ने यह आदेश भी जारी कर दिया कि अब टर्की के नागरिकों को पाश्चात्य वेश-भूषा ही पहनना आवश्यक है।

8.8.4 भाषा-लिपि संबंधी सुधार- शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हेतु भाषा-लिपि में सुधार भी अत्यन्त आवश्यक था । टर्की के नागरिक अभी तक अरबी लिपि का ही प्रयोग कर रहे थे । कमाल पाशा ने 1926 ई. के भाषा सम्मेलन में अरबी लिपि के स्थान पर लैटिन लिपि के प्रयोग की स्वीकृति दी एवं सन् 1928 में अरबी लिपि समाप्त कर दी । समाचार-पत्रों एवं पुस्तको के प्रकाशकों को भी नई लिपि अपनाने के लिए बाध्य किया गया। शिक्षण संस्थाओ एवं अनेक सार्वजनिक स्थानों पर लेटिन लिपि का प्रयोग शुरू किया गया। इस लिपि के ज्ञाता ही राजकीय सेवा मे नियुक्ति पा सकने योग्य हो सकते थे। इस प्रक्रिया को और अधिक लोकप्रिय बनाने हेतु विदेशों से छापेखाने एवं मशीने आयात की गई । अरबी एव इस्लामी परम्पराओं के स्थान पर वहां पाश्चात्य परम्पराएँ लागू करना उसका मकसद था इस हेतु जुलाई, 1932 में ' तुर्की भाषा परिषद' गठित की गई जिसका मकसद टर्की भाषा के प्राचीन गौरव को पुन: स्थापित करना था। अरबी अंको के स्थान पर यूरोपीय अंको का प्रयोग भी अनिवार्य था।

8.8.5 स्त्रियों की स्थिति संबंधी सुधार- टर्की में महिलाओं की अवस्था शोचनीय थी एवं उन्हें कोई सामाजिक या राजनैतिक अधिकार भी प्राप्त नहीं थे। उन्हें पर्दे में रहने के साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करने का भी कोई अधिकार नही था। कमाल पाशा ने उनका सहयोग प्राप्त करने हेतु उनकी दशा में सुधार किये। इस दिशा में पहला कदम यह था कि उसने पर्दा-प्रथा समाप्त कर दी। प्राचीन वैवाहिक पद्धति में पूर्णरूपेण परिवर्तन कर दिया एवं नाबालिग लड़कियों की शादी गैर कानूनी घोषित कर दी । सभी क्षेत्रो में यहां तक कि राजनैतिक क्षेत्र में उन्हे पुरुषों के समानाधिकार दिये। टर्की में सत्तावादी दल के विरोधी नेता स्वयं कमाल पाशा की बहिन थी । महिलाओं को नाच-गान, ओपेरा, क्लब इत्यादि में जाने की स्वतंत्रता दी गई, बहुपत्नी विवाह का

निषेध किया गया। इसके साथ ही मुस्लिम महिलाओं को गैर-मुस्लिमों के साथ विवाह की अनुमति प्रदान की गई शिक्षित महिलाओं को शासकीय सेवाओं एवं अन्य व्यवसायों में स्थान दिया जाने लगा। उन्हें चुनाव लड़ने का अधिकार भी दिया गया ।

8.8.6 न्याय व्यवस्था संबंधी - गणतंत्र की स्थापना होने तक तुर्की की न्याय प्रणाली इस्लामी कानूनों पर आधारित थी साथ ही अन्य धर्मावलम्बियों के लिए भी उनके धार्मिक कानूनों के अनुसार निर्णय दिया जाता था। कमाल पाशा ने इस सबके बजाय एक समान न्याय पद्धति अपनाने का निर्णय लिया। इसलिए उसने 1926 ई. स्विट्जरलैण्ड के सिविल संहिता को यथावत एवं इटली की दण्ड-संहिता में कुछ परिवर्द्धन एवं संशोधन करके अपना लिया। इसके अलावा इटली जर्मनी की व्यापार पद्धतियों पर आधारित एक नई व्यापार-संहिता लागू की गई। कमाल पाशा ने प्रशासनिक दृष्टी से भी अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये जिनके तहत टर्की को 62 प्रान्तों में बाँटा जिसमें 430 जिले थे।

8.9 आर्थिक सुधार

कमाल पाशा देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाकर वहां औद्योगिक रूप से आत्मनिर्भरता लाना चाहता था। लेकिन टर्की में 80% लोग कृषि से जुड़े हुए थे। आवश्यक पूंजी नही थी और वे विदेशों से ऋण लेना भी पसंद नही करते थे। यातायात के साधन अनुपयुक्त एवं अपर्याप्त थे लेकिन इन बाधाओं के बावजूद पाशा ने एक ओर तो वार्षिक आय-व्यय मे सन्तुलन बनाया दूसरी तरफ उद्योगों को विकसित करने खे यथाशक्ति प्रोत्साहन दिया। सर 1927 मे देश की संसद ने उद्योगों की सहायता खे कानून पास किया। उद्योगों को प्रोत्साहित करने हेतु संरक्षात्मक टैरिफ दरें लागू कई । प्रशासन ने रेलवे मार्गों और सड़को का जीर्णोद्धर एवं विस्तार किया। उसने कुछ बड़े उद्योगो जैसे नमक पेट्रोल, तम्बाकू, नौपरिवहन, माचिस, शक्कर अल्कोहल इत्यादि पर राज्य का एकाधिकार रखा। सन 1933 में उद्योगों के विकास हेतु पंचवर्षीय योजना बनाई गई सुगैर बैंक की स्थापना एवं इसकी सहायतार्थ इश बैंक और एटी बैंक की स्थापना का लक्ष्य भी विभिन्न उद्योगों के वित्तिय सहायता देना एवं उन पर नियंत्रण रखना था। औद्योगिकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में रूस से प्राप्त ब्याज रहित ऋण काफी सहायक रहा। इन सबके परिणामस्वरूप वस्त्र, शक्कर, खनिज, कांच कागज आदि उद्योगों में उल्लेखनीय प्रगति हुई। पाशा सरकार ने नियंत्रित एवं संचालित अर्थव्यवस्था या इटाटिंज्म के सिद्धान्त के आधार पर देश का औद्योगीकरण करने का प्रयास किया। लेकिन औद्योगीकरण से मजदूरों की समस्याएं सामने आई। उन्हें सन्तुष्ट रखने हेतु ' श्रमिक संहिता' बनाई एवं श्रमिक कल्याणार्थ कुछ नियम भी बनाये।

कृषि सुधार की तरफ कपाल पाशा ने ध्यान दिया। उस समय कृषकों की आर्थिक दशा शोचनीय थी। लगभग 50 प्रतिशत किसान भूमिहीन थे। राज्य ने अनेक माध्यमों द्वारा कृषि के नये तरीकों का प्रचार किया। तुर्की विद्यार्थियों को कृषि मे उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु विदेशो में भेजा, सहकारी समितियां स्थापित की और गरीब कृषकों को राज्य ने सहायता दी एवं भूमिहीन कृषकों को कृषि योग्य भूमि प्रदान की। इस नीति के फलस्वरूप तम्बाकू, शक्कर, गेहूँ,

कपास के उत्पादन में तुर्की आत्मनिर्भर ले गया एवं काफी मात्रा में कृषि उत्पादन बाहर भेजा जाने लगा।

8.10 प्रमुख अन्य सुधार

1926 से पूर्व टर्की में वर्ष की गणना माली कलेण्डर के आधार पर की जाती थी जो असुविधा जनक थी । उसके स्थान पर पश्चिमी देशों में प्रचलित ग्रेगरी कलेण्डर को अपनाया। समय की गणना हेतु 24 घंटे वाली घड़ियों को आधार बनाया एवं 1932 ई. में माप-तौल में मीट्रिक प्रणाली को अपनाया लिया। कुछ मुख्य शहरों के नाम भी बदले गये एवं सन् 1935 से हरेक व्यक्ति से अपने नाम के साथ उपनाम रखना स्वीकार कर लिया गया। शुक्रवार के स्थान पर रविवार को साप्ताहिक अवकाश रखने की परम्परा डाली इसी तरह से अनेक सुधारों द्वारा कमाल पाशा ने टर्की को आधुनिक रूप देने एवं राष्ट्रीयता जाग्रत करने का प्रयास किया।

8.11 कमाल पाशा का मूल्यांकन

मुस्तफा कमाल पाशा वास्तव में आधुनिक टर्की का निर्माता था जिसने अपने 6 सिद्धान्तों, के अनुसार टर्की में जो सुधार किये एवं विदेश नीति के क्षेत्र में जो कार्य किये उससे टर्की एक सशक्त राष्ट्र के रूप में अवतरित हुआ। इन सुधारों के पीछे उसका मकसद टर्की का पश्चिमीकरण करना था। उसने टर्की के प्राचीन एवं मध्यकालीन अवशेषों को नष्ट कर विकास को गति प्रदान की । यही कारण है कि टर्की के आधुनिकरण का इतिहास सिर्फ एक व्यक्ति का इतिहास है। उसने यूरोप के मरीज को सिर्फ औषधी ही नही दी बल्कि शल्यकरण क्रिया द्वारा रोगी के बेकार अंगो को काटकर अलग कर दिया जिससे एक नये टर्की गणराज्य का विकास हुआ । इतिहासकार स्मिथ का कहना है कि सन् 1918 में औटोमन साम्राज्य नष्ट हो गया था उसके खण्डहरों से एक राष्ट्रवादी आन्दोलन का जन्म हुआ जो आधुनिक टर्की के जन्म का माध्यम बना और इस आन्दोलन का सूत्रधार था-मुस्तफा कमाल पाशा ' अतातुर्क'

8.12 संभावित प्रश्न

1. मुस्तफा कमाल पाशा के आरंभिक जीवन का वर्णन कीजिए ।
2. 'मुस्तफा कमाल पाशा नवीन टर्की का निर्माता था' स्पष्ट कीजिए ।
3. कमाल पाशा वास्तव में आधुनिक टर्की का राष्ट्रपिता था' समझाइये ।
4. कमाल पाशा के सुधारों पर एक लेख लिखिये ।

8.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लार्ड किबरोज- 'अतातुर्क'
2. ज्योफ्रे लुइस- ' टर्की'
3. मेकाटने एवं पामर- इंडिपेंडेंट ईस्टर्न यूरोप' टर्किश
4. रिचर्ड डी राबिन्सन "-दी फस्ट रिपब्लिकन" ।
5. अर्नेस्ट जाख -" दी राइजिंग क्रेसेण्ट-टर्की यस्टरडे, टूडे एण्ड टूमारो।"
6. देवैन्द्र सिंह चौहान- " समकालीन यूणेप।"

इकाई-9
नये गणतंत्र-वाइमर गणतंत्र

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 जर्मन गणतंत्र
9.3 वाइमर संविधान निर्माण
  9.3.1 कार्यपालिका
  9.3.2 व्यवस्थापिका
9.4 वाइमर गणतंत्र की कठिनाइयां (1919- 33)
  9.4.1 जनता का विरोध
  9.4.2 राजनैतिक एवं सेनिक हत्याएं
9.5 फ़्रांस का रूर प्रदेश पर कब्जा
9.6 आर्थिक कठिनाईयां
9.7 डावेस योजना
9.8 वाइमर गणतंत्र (1924-29)
9.9 वाइमर गणतंत्र की विदेशी नीति
9.10 वाइमर गणतंत्र का पतन
9.11 पतन के करण
9.12 संदर्भग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ाने के पीछे हमारा उद्देश्य है कि प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व जर्मनी जो महान शक्ति के रूप में विकसित हुआ था। युद्धोपरांत उसकी अर्थव्यवस्था, शासनतंत्र एवं सेनिक शक्ति का ह्रास ले चुका था। लोग इसके लिए राजतंत्र को दोषी मानते थे। विश्व के अन्य देशों की तरह यहां भी राष्ट्रवाद का विकास होने लगा था इसलिए लोगों का यह मानना था कि यहां शांति व्यवस्था बहाल करने में गणतंत्र शासन प्रणाली ही सफल हो सकती है इसलिए वाइमर गणतंत्र की स्थापना की गई लेकिन यह लोगों की आशाओं पर पूरा फिट नहीं उतरा। नाजीवाद के उत्थान से इसका अस्तित्व खत्म हो गया और अधिनायकतंत्र स्थापित हो गया। इन्हीं सभी बातों का उल्लेख हमने इस इकाई में किया है ।

9.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत में धूरी राष्ट्रों की सेनाएं काफी हद तक सफलता प्राप्त करने में कामयाब रही लेकिन चार महाशक्तियों के सामने इन राष्ट्रों की सेनाएं जगह-जगह पराजित होने लगी थी । सन् 1917 में कठोर नाकाबंदी और पैदावार खराब होने की वजह से जर्मन जनता

कई समस्याओं का सामना कर रही थी । ऐसे में जब जर्मन सेनाओ की पराजय की खबरें गृह राष्ट्र में पहुंचती थी तब जर्मन नागरिक एवं प्रमुख राजनीतिक दल सम्राट को हटाने की मांग करने लगे । आस्ट्रिया ने हथियार डाल दिये थे लेकिन जर्मनी ने युद्ध जारी रखा लेकिन जब 24 अक्टूबर, 1918 को जर्मनी के कील बन्दरगाह पर नौसेना ने बगावत खड़ी कर दी और उसमें मजदूर भी शामिल हो गये तब इस विद्रोह को जर्मन सम्राट दबाने में असमर्थ रहा। इस बगावत का असर अन्य बड़े शहरों में शीघ्र देखने को मिला तत्कालीन प्रधानमंत्री प्रिंस मैक्स तथा सेनापति हिंडन-बर्ग ने सम्राट को पदत्याग की सलाह दी लेकिन सम्राट द्वारा यह सलाह नही मानने के बाद मैक्स ने बिना सम्राट की अनुमति के सम्राट के सिंहासन परित्याग की घोषणा कर दी । इससे घबराकर सम्राट हालैण्ड भाग यगा। मैक्स ने प्रधानमंत्री का पद छोड़कर फेन को नया प्रधानमंत्री बना दिया। इस प्रकार एक गौरवपूर्ण और एक सबल सामाज्य जिसने विश्व की कल्पना में लगभग अर्द्ध शताब्दी तक अपना स्थान बरबस बना लिया था, सहसा नष्ट हो गया । यह विश्व की महान घटना थी। हैजन की मान्यता है कि जीवित व्यक्तियों की समृति में इतना आश्चर्यजनक परिवर्तन पहले कभी नही हुआ।

9.2 जर्मन गणतंत्र

जर्मन सम्राट के पलायन के बाद समाजवादी दल के एक प्रमुख नेता ने अपने सहयोगियों से विचार विमर्श के बगैर 'जर्मन गणतंत्र' की घोषणा कर दी । प्रधानमंत्री राबर्ट के नैतृत्व में एक अस्थाई सरकार गठित की गई । हालांकि 11 नव., 1918 को युद्ध विराम समझौते पर हस्ताक्षर हो गये थे लेकिन अस्थाई सरकार के सामने विकट राजनैतिक आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएं थी। इससे भी बड़ी समस्या नये गणतंत्र का संविधान तैयार करने की थी । जन. 1919 में राष्ट्रीय संविधान सभा के निर्वाचन कराने की घोषणा की गई ।

आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर चुनाव सम्पन हुए जिसमे सर्वाधिक स्थान 421 में से 163 स्थान सोशल डेमोक्रेटिक दल को प्राप्त हुए । 6 जन. 1919 को राष्ट्रीय सभा का प्रथम अधिवेशन वाइमर नामक छोटे शहर के शान्त वातावरण मेँ शुरु हुआ । एबर्ट की अस्थाई सरकार ने पदत्याग कर दिया। किसी भी दल के बहुमत न मिलने की अवस्था मे सर्वाधिक स्थान जीतने वाली सोशल डेमोक्रेटिक दल ने सेंटर पार्टी, डेमोक्रेटिक दल के साथ मिलकर अंतरिम सरकार गठित की इसे ' वाइमर कौएलेशन' के नाम से जाना जाता है। वाइमर की राष्ट्रीय सभा एवं अन्तरिम सरकार के सामने अन्य समस्याओं के अलावा गणतंत्र के लिए स्थाई संविधान का निर्माण करना भी एक गहन समस्या थी गणतंत्र सरकार ने युद्ध विराम करके वर्साय की संधि पर हस्ताक्षर कर दिये जिससे देश में अराजकता व्याप्त हो गई। यह संधि इतनी घृणित एवं कठोर शर्तों वाली थी कि अनेक लोगो ने इस पर हस्ताक्षर न करने और पुन : युद्ध करने की बात कही लेकिन जर्मनी दुबारा युद्ध छेड़ने की स्थिति मे नही था इसलिए इस संधि पर हस्ताक्षर करने के अलावा जर्मनी के पास कोई चारा नही था।

9.3 वाइमर संविधान

वर्साय की अपमानजनक संधि पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद वाइमर कई राष्ट्रीय सभा ने संविधान निर्माण का कार्य पूर्ण किया जिसका मसौदा अस्थाई सरकार के गृह मंत्री हूगों प्रुस ने

तैयार किया । प्रारंभिक आवश्यक संशोधनों के बाद सभा के पूर्ण अधिवेशने में संविधान की विभिन्न धाराओं पर बहस की । अनेक दलों के विरोध के बावजूद 14 अग., 1919 को वाइमर संविधान को विधिवत लागू कर दिया। नवीन संविधान के अनुसार समस्त जर्मन नागरिको को बिना रंग, लिंग के विभेद के राजनैतिक समानता, धर्म, भाषण, प्रेस की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की। संविधान के अनुसार समस्त जर्मनी को 18 संघीय राज्यो का गणतंत्र घोषित किया गया। संघ राज्य में शामिल प्रत्येक सदस्य राज्यों को भी गणतंत्रीय संविधान बनाना अनिवार्य बनाया गया। 20 वर्ष से अधिक आयु के सभी जर्मन स्त्री-पुरुषो को मताधिकार मिला एक अधिकार पत्र द्वारा नागरिकों के मूल अधिकारों और कर्तव्यों को परिभाषित किया गया। शासन की वास्तविक सत्ता मंत्रिमण्डल में निहीत की गई। संसद द्विसदनात्मक थी । प्रधानमंत्री और उसके मंत्रिमण्डल को रइख-स्टेग (निमन सदन) के प्रति उत्तरदायी बनाया गया। इस संविधान में एक विशेषता यह थी कि इसमें एक राष्ट्रीय आर्थिक परिषद ' का गठन भी इसके द्वारा किया गया था जिसका कार्य संसद को आर्थिक एवं सामाजिक कार्यों की सलाह देना था। इस प्रकार वाइमर संविधान के द्बारा जर्मनी में एक संसदीय लोकतंत्र की स्थापना हुई।

9.3.1 कार्यपालिका-वाइमर संविधान में कार्यपालिका का अस्तित्व था । जिसका अध्यक्ष राष्ट्रपति होता था जिसकी नियुक्ति सात वर्ष के लिए वहां की जनता करती थी वह लोकसभा को भंग करके 60 दिन के भीतर उसके पुर्न निर्वाचन कराने की शक्ति रखता था । एवं राष्ट्रपति को कुछ संक्टकालीन अधिकर भी प्राप्त थे। प्रधानमंत्री (चांसलर) एवं मंत्रिमण्डल के सदस्यों के हाथ मे शासन था। साधारणत; शासन संबंधी सभी कार्य मंत्रिमण्डल द्वारा करने का प्रावधान इस संविधान में था। मंत्रिमण्डल के सदस्य प्रधानमंत्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते थे। एवं मंत्रिमण्डल सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता था। लोकसभा को बहुमत के आधार पर मंत्रिमण्डल को भंग करने का अधिकार प्राप्त था। व्यावहारिक रूप से इस विषय पर संसदीय पद्धति का पालन नही किया जाता था।

9.3.2 व्यवस्थापिका- व्यवस्थापिका के दो सदनों की व्यवस्था वाइमर संविधान के अन्तर्गत थी। लोकसभा (राइसस्टेग) के सदस्यो का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर 20 वर्ष से अधिक आयु के स्त्री-पुरुष प्रत्यक्ष एवं गुप्त मतदान द्वारा होता था। इस व्यवस्था को अपनाने के पीछे संविधान निर्माताओं का उद्देश्य सभी राजनैतिक दलों को उन्हें प्राप्त मतों के अनुपात से प्रतिनिधित्व प्रदान करना था। इस सदन को महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त थे। उसे कानून बनाने, वार्षिक बजट स्वीकार करने का अधिकार प्राप्त था। प्रधानमंत्री एवं अन्य मंत्री भी उसके प्रति उत्तरदायी थी। यदि यह सदन सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास कर देता था तो मंत्रिमण्डल के इस्तीफा देना पड़ता था।

व्यवस्थापिका का दूसरा अंग राइखसराट (उच्च सदन) कहलाता था। इसमें 18 राज्यों का प्रतिनिधित्व होता था। प्रत्येक राज्य कम से कम एक प्रतिनिधि भेजता था इसकी अवधि चार वर्ष की होती थी। गणतंत्र के अन्तिम वर्षों में इसके सदस्यों की संख्या 60 तक पहुंच गई थी। इसके अधिकार सीमित थे एवं इसका कार्य लोकसभा की जल्दबाजी पर रोक लगाना था।

लोकसभा द्वारा पारित कानूनों को उसे निरस्त करने का अधिकार नही था हालांकि वह उन्हें पास करने में कुछ देर कर सकता था।

राज्यो एवं संघीय सरकार के बीच एवं राज्यों के आपसी विवादो के निपटारे के लिए एक उन संवैधानिक अभिकरण की व्यवस्था की गई थी।

वाइमर संविधान की अन्य विशेषता यह भी थी कि उसके अंतर्गत एक राष्ट्रीय आर्थिक परिषद का भी सृजन किया गया था। जिसकी सदस्य संख्या 325 थी जो आजीवन उसके सदस्य होते थे। आर्थिक मामलों में संसद को परामर्श देना, श्रमिकों, उद्योगपतियों, कृषकों एव भूमिपतियों से संबंधित सभी विधेयकों पर परामर्श देना उसका कार्य था। इसे कोई भी अधिनियम बनाने का अधिकार प्राप्त नही था।

9.4 वाइमर गणतंत्र (1919 - 1933) की कठिनाइयां

सन् 1919 में वाइमर गणतंत्र की स्थापना जर्मन पराजय के बाद हुई थी। जो 1933 तक अपना कार्य अनेक महान विपत्तियों के बावजूद भी करता रहा। पराजित जर्मनी की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशा तहस-नहस हो चुकी थी । चारों तरफ निराशा एवं क्षोभ का वातावरण था । वर्साय की अपमानजनक संधि पर इसी सरकार ने हस्ताक्षर किये थे जिससे भी इसके विरोधी उसे गद्दार कहने से भी नही चूकते थे। प्रारंभ से ही इस सरकार को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। उनमें से प्रमुख निम्नांकित है -

9.4.1 जनता का विरोध- युद्ध में भयंकर विनाशलीला एवं निराशा के वातावरण से क्षुब्ध जर्मन नागरिक इस संसदीय प्रणाली के विरोधी थे । जिसका उन्हें पूर्व में कोई अनुभव नहीं था । कुछ उग्रपंथी दल जिनमें साम्यवादी प्रमुख थे, प्रारंभ से ही इस गणतंत्र के विरोधी थे ।

9.4.2 राजनैतिक हत्याएं- गणतंत्र विरोधियों ने 1921 में केन्द्रीय दल के नेता एर्जबर्गर की हत्या कर दी जो कि सामाजवादी दल का प्रमुख राजनीतिज्ञ था । सन् 1922 में डेमोक्रेटिक दल के प्रमुख वाल्टर राथेनों को भी मौत के घाट उतार दिया गया। यह एक प्रमुख उद्योगपति एवं सरकार में विदेश मंत्री के पद पर था। इसी प्रकार कई उदारवादी राजनीतिज्ञों के अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। तत्कालीन न्यायाधीशों के पुराने साम्राज्य के पक्के समर्थक होने से इन अपराधियों को दण्डित भी नही किया जा सका।

इन राजनैतिक हत्यारों से भी विद्रोही शान्त नही हुए। उन्होने उन सेनिक अधिकरियों को मारने की योजनाएं बनाई जो जर्मन पराजय के जिम्मेदार माने जाते थे। उन्होने लगभग 353 सेनिक अधिकारियों की हत्या कर दी। इस अव्यवस्था के वातावरण का फायदा उठाकर हिटलर ने 1923 में म्यूनिख में अपने को गपतंत्र का प्रधानमंत्री घोषित कर दिया हलांकि वह पकड़ा गया एवं 5 वर्ष के लिए जेल में डाल दिया गया।

मुद्रास्फीति एवं बेरोजगारी का बाजार गर्म था। असन्तोष का सामाज्य था। इस अवस्था का लाभ उठाकर मार्च, 1920 में वान काप ने सरकार का तख्ता पलटना चाहा और जनरल लुतवित्स ने बर्लिन पर अधिकर कर लिया। सरकार इन विद्रोहियों को दबाने में असमर्थ थी इसलिए राष्ट्रपति प्रधानमंत्री से राजधानी छोड़कर भागना पड़ा। इन्होनें एक अपील में देशव्यापी श्रमिकों की हड़ताल द्वारा इन विद्रोहियों के षड्यंत्र को विफल करने की एक अपील प्रकाशित

की। 14 मार्च को श्रमिकों ने हड़ताल कर दी। जनता का असहयोग देखकर विद्रोहियों ने देश छेड़कर अन्यत्र शरण ली। श्रमिक सहयोग से गणतंत्रीय सरकार ने पुन: बर्लिन पर अपना झंडा फहराया लेकिन साम्यवादियों एवं समाजवादियों ने मजदूरों को संगठित करके उनसे हड़ताल करवा दी। गणतंत्रीय सरकार ने श्रमिकों से निपटने के लिए सेना कई मदद ली जिसने उपद्रवग्रस्त क्षेत्र में पहुंचकर श्रमिक आन्दोलन का बुरी तरह से अन्त कर दिया।

9.5 फ्रांस का रूर प्रदेश पर कब्जा

फ्रांस द्वारा रूर प्रदेश पर कब्जा करने से गणतंत्र विरोधियों एव जर्मन नागरिकों मे, भयंकर रोषपूर्ण प्रतिक्रिया हुई। गणतंत्र विरोधियों ने राइनलैंड में एक गणतंत्र स्थापना का षडमंत्र रचा जोकि सफल नही हो सका। उसी वक्त गणतंत्र सरकार ने साम्यवादियों एवं समाजवादियों द्वारा सेक्सनी एवं थुगिया पर अधिकर की चेष्टा को असफल कर दिया। हिटलर, ल्यूडेनडार्फ और गुस्ताव वान ने गणतंत्रीय सरकार का तख्ता पलटने का षडयंत्र रचा जो सफल नही हो सका।

9.6 आर्थिक कठिनाइयां

युद्ध समाप्ति पर जर्मनी की अर्थव्यवस्था अति जीर्णशीर्ण हो चुकी थी। उससे सारे औद्योगिक क्षेत्र छीन लिये गये थे और विदेशी व्यापार संकुचित हो गया था जिससे राष्ट्रीय आय का ह्रास हो चुका था इस अवस्था से निपटने के लिए सरकार ने कागजी मुद्रा प्रचलित की जिससे कीमते. बढ़ी। ऐसी भयंकर स्थिति में जर्मनी को युद्ध क्षतिपूर्ति चुकाना भी असंभव प्रतीत हो रहा था। उस पर मिश्र राष्ट्रों ने 6 अरब 60 करोड़ प्रति पौण्ड युद्ध हर्जाने के रूप में थोपे थे जिसे चुकाने के लिए जर्मनी को प्रतिवर्ष एक करोड़ प्रतिवर्ष एवं जर्मन निर्यात का 25% कर देनें को कहा गया था। किसी प्रकार जर्मनी ने पहली किस्त 1921 में अदा तो कर दी लेकिन उससे जर्मनी की कमर टूट गई। उसकी करेंसी मार्क के मूल्य का ह्रास चरम सीमा तक पहुंच गया। अगली किश्तें चुकने के जर्मनी के पास पैसा नही था इससे रुष्ट होकर बेल्जियम ने फ्रांस का साथ देकर जर्मनी के औद्योगिक शहर रूर पर कब्जा कर लिया। इससे जर्मनी की अर्थव्यवस्था और बिगड़ गई।

अगस्त 1923 में प्रधानमंत्री कूनो के त्यागपत्र के बाद उसके उत्तराधिकारी स्ट्रेसमान ने वित्तमंत्री ल्यूथर व शाक्ट को भयंकर आर्थिक अव्यवस्था से देश को उभारने का कार्य सौंपा। नाटो का प्रचलन बंद कर उसके स्थान पर ' रेन्टेनमार्क' नामक मुद्रा प्रचलित की । नई मुद्रा प्रचलित करने के साथ-साथ राष्ट्रीय बजट को संतुलित करने हेतु सरकारी खर्च में भारी कमी की। अनावश्यक कर्मचारियों को हटाकर बचे हुए की तनख्वाहें कम कर दी गई कर बढ़ाये गये। इन सभी उपायों से बजट संतुलित हो, गया और मुद्रा स्फीति भी रुक गई।

9.7 डावेस योजना

मित्र राष्ट्रों ने क्षतिपूर्ति के प्रश्न को आर्थिक विशेषज्ञों की एक समिति को सोपा जिसका अध्यक्ष डावैस था। इस समिति ने जर्मनी द्वारा दी जाने वाली क्षतिपूर्ति के विषय में 9 अप्रैल 1924 को कुछ सुझाव प्रस्तुत किये । उसके अनुसार-

(i) रूर प्रदेश से फ्रेंच सेनाएं हटा ली जायें

(ii) 50 वर्ष के लिए प्रचलन बैंक की स्थापना की जाये, तथा नवीन मुद्रा (रीश मार्क)जारी की जाये।

(iii) करोड़ डालर का विदेशी ऋण जर्मनी को मिलना चाहिये ।

(iv) जर्मनी अपनी आय के कुछ स्त्रोत सुरक्षित रखे।

इस योजना द्वारा जर्मनी की अर्थव्यवस्था को सुधारने का प्रयास किया गया जिसे उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

9.8 वाइमर गणतंत्र (स्थिरता-अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग- 1924- 1929)

इस काल में वाइमर गणतंत्र की हालत पहले से अधिक स्थिर एवं शान्तिपूर्ण रही । इस अवधि में गणतंत्र सरकार ने न केवल मुद्रा स्फीति को रोका बल्कि आर्थिक पुनर्रूद्धर एवं समृद्धी के नवीन युग में प्रवेश किया आंतरिक समृद्धि एवं बाह्य क्षेत्र में ' लोकार्नो भावना' से प्रेरित होकर शान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के वातावरण में गणतंत्र विरोधियों को सरकार के खिलाफ षड्यंत्र करने का मौका ही नही मिला।

9.9 वाइमर गणतंत्र की विदेशी नीति

प्रथम विश्व युद्ध का सारा आरोप जर्मनी पर थोपा गया था । विश्व युद्ध से पूर्व जर्मनी जो विश्व राजनीति पर छाया हुआ था उसका प्रभाव अब केवल नहीं के बराबर रह गया था। वह मित्र राष्ट्रों के इशारो पर नाचता था। उसे राष्ट्रसंघ की सदस्यता से वंचित रखा गया एवं अन्तर्राष्ट्रीय बैठकों में भी उसे आमंत्रित नही किया जाता था एक प्रकार से वह विश्व समाज से बाहर समझा जाता था ऐसी स्थिति में वाइमर गणतंत्र की विदेशी नीति का मुख्य उद्देश्य जर्मनी को पुन: महान राष्ट्रों की कतार में सम्मानजनक स्थिति में खड़ा करना था। लेकिन विदेश नीति के संबंध उसके राजनीतिज्ञों में मतैक्य नही था। एक समूह चाहता था कि पूर्व के देश सोवियत रूस से मित्रता की जाये और वर्साय संधि द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों की अवहेलना करने के पक्ष में था जबकि दूसरा समूह वर्साय संधि का अक्षरत: पालन करने और मित्र राष्ट्रों से सबंध बढ़ाने के पक्ष में था। गणतंत्रीय शासन के प्रारम्भिक वर्षों में पूर्वी देश से मित्रता बढ़ाने पर जोर दिया गया। अप्रैल 1922 में जेनेवा सम्मेलन में जर्मनी-रूस के प्रतिनिधि गुप्त रूप से मिले एवं एक सधि कर ली ।

लेकिन जर्मन विदेश मंत्री गुस्ताव स्ट्रेसमान ने पश्चिमी देशों से ताल्लुकात बनाने पर बल दिया। एक कुशल राजीनतिज्ञ होने के नाते वह इस बात को भली भांति जानता था कि मित्र राष्ट्रों से सहयोग एवं मेलमिलाप से ही जर्मनी को पुन: विश्व के प्रमुख राष्ट्रों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उसने सित. 1923 फ्रांस के आधिपत्य के विरुद्ध शान्ति पूर्ण प्रतिरोध की नीति को त्याग दिया। इससे वह अन्य मित्र राष्ट्रों की सहानुभूति प्राप्त करने में कामयाब रहा। उसके काल में डावेस योजना आई जिसने न केवल जर्मनी की वित्तीय व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण में सहयोग दिया अपितु उसका विदेशी व्यापार भी बढ़ा। फ्रांस, ब्रिटेन और जर्मन विदेशी मंत्री के पारस्परिक सहयोग से अक्टू. 1925 में लोकार्नो की संधियों पर हस्ताक्षर हो गये। सन् 1926 में उसे राष्ट्र संघ का सदस्य बनाया गया । लोकानों समझोते द्वारा जर्मनी ने मित्र राष्ट्रों की सहानुभूति पाने के साथ-साथ, बर्लिन संधि द्वारा स्ट्रेसमान ने

रूस-जर्मन मित्रता को भी यथावत बनाये रखा। इससे जर्मनी की प्रतिष्ठा बढ़ी और अन्य महत्वपूर्ण विषयों में अपना मत रखने का मौका मिला ।

स्ट्रेसमान कई विदेश नीति के दो लक्ष्य थे

(i) जर्मनी की जमीन से सहबद्ध राष्ट्र-नियंत्रण आयोग एवं सेनाओं को हटाना एवं

(ii) क्षतिपूर्ति के भार को कम करना ।

इन नीतियों में सफलता प्राप्त करना उसका लक्ष्य था उसके प्रयासों से अन्तरमित्र-राजकीय नियंत्रण आयोग से जर्मनी को हटा लिया गया। सन् 1928 में उसने केलॉग-ब्रियां समझोते पर दस्तखत कर दिये। सन् 1928 में जर्मन प्रतिनिधि एवं पांच राष्ट्रों के सदस्य इस बात पर सहमत हो गये कि क्षति पूर्ति की समस्या का स्थायी निवारण से अर्थाविशेषज्ञों की बैठक बुलाई जाये एवं राइनलैण्ड को खाली कराने हेतु वार्तायें कराई जाये। यंग की अध्यक्षता में एक योजना बनी जो ' यंग योजना' के नाम से जानी जाती है। सन् 1929 में हेग सम्मेलन में इसके प्रस्तावों को मानकर राइनलैण्ड से मित्र सेनाएं हटने लगी ।

अक्ट्रबर, 1930 में स्ट्रेसमान की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी कर्टियस ने अपने पूर्व साथी की नीति का पालन किया लेकिन आस्ट्रिया-जर्मन सीमा-शुल्क संध की स्थापना में उसकी योजना के फैल हो जाने पर कार्टियस ने त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद कट्टर राष्ट्रवादियों के विरोध एवं फ्रांस की जिद के करण वाइमर गणतंत्र ने अपनी विदेशनीति संचालित करने में काफी मुश्किले आई। सन् 1929 की आर्थिक मंदी का जर्मनी पर बहुत बुरा असर पड़ा जिसके कारण उस वातावरण में उग्र राष्ट्रवाद से नाजीवाद के तत्व जर्मनी में तेजी से विकसित लेने लगे। सन् 1933 में हिटलर के सत्तारूढ़ हो जाने से विदेश नीति में आमूल-चूल परिवर्तन आ गया।

9.10 वाइमर गणराज्य का पतन- (1930- 33)

सन् 1930 में प्रधानमंत्री हेनरिक के पदभार संभालने के बाद भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उस समय भी जर्मनी को विश्व व्यापी आर्थिक मंदी का सामना करना पड़ रहा था । इसके साथ ही साम्यवादी सोशल डेमोक्रेटिक व नात्सी दलों के विरोध का सामना भी करना पड़ रहा था। सन् 1930 के बजट को भी विरोधियों ने अस्वीकार कर दिया।

हिटलर के नेशलिस्ट सोशल दल को 1930 के निर्वाचन में भारी सफलता मिली थी । इसके साथ ही साम्यवादी दल के सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई। चुनाव में गणतंत्र विरोधी ताकतों की जीत इस बात की सूचक थी कि अब गणतंत्र अधिक दिनों का मेहमान नहीं है । चुनाव के बाद भी प्रधानमंत्री ब्रुनिग ने दक्षिण पंथी दलों के समर्थन से मंत्रिमण्डल बनाया था लेकिन उसे राष्ट्रपति की आज्ञप्तियों के सहारे ही काम चलाना पड़ा। ब्रुनिग ने दो वर्ष तक अपना कार्य किया तथापि संसदीय गणतंत्र की असफलता साफ दृष्टिगोचर हो रही थी। सन् 1931 में आस्ट्रियन बैंक क्रेडिट आनस्टाट के दिवालिया होने से जर्मन अर्थसंकट चरम सीमा पर था । प्रधानमंत्री ने राष्ट्रीय बजट को संतुलित करने हेतु सरकारी खर्च में कमी की, लेकिन फयदा नही हुआ। बेकारी की समस्या भी भीषण थी । गणतंत्र विरोधी दलों ने इस असंतोष को और अधिक भड़काया। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा जर्मन-आस्ट्रिया सीमा शुल्क संघ को शान्ति

संधियों के विरुद्ध घोषित कर दिया जो वास्तव में ब्रुनिग की पराजय थी । जिसका विरोधियों ने पूरा फायदा उठाया। जर्मनी के प्रमुख विरोधी दलों के नेताओ और उद्योगपतियों ने एक समझोता किया जिसका उद्देश्य साम्यवाद के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकना था। इस गठबंधन से हिटलर को उद्योगपतियों का समर्थन प्राप्त हो गया। सर 1931 के आखिर तक हिटलर के भूरी कुर्ती वाले दल ने जर्मनी के विभिन्न हिस्सों में हिंसक उपद्रव करना शुरु कर दिया ।

राष्ट्रपति हिन्डेनबर्ग का कार्यकाल समाप्त होने पर निर्वाचन हुए जिसमें, किसी भी दल के 50% मत नहीं मिले। दुबारा चुनाव में हिन्डेनबर्ग को राष्ट्रपति बनाया गया। प्रधानमंत्री ब्रुनिग ने हिटलर के उग्रवादी दल से प्रतिबंधित कर दिया। ब्रुनिग को अपदस्थ करने हेतु राष्ट्रपति के सलाहकारों ने उसके समक्ष उसकी शिकायतें करनी शुरू की। राष्ट्रपति के समर्थन बिना उसका काम करना असंभव था इसलिए उसने 1932 के अंत में त्यागपत्र दे दिया उसके उत्तराधिकारी वान पापेन को प्रधानमंत्री बनाया गया जिसके मंत्रिमण्डल में सामंतों की संख्या अधिक थी । उसने अप्रत्यक्ष रूप से हिटलर का समर्थन प्राप्त करना चाहा क्योंकि उसने उसके प्रतिबंधित दलों से प्रतिबंध हटा लिया था। प्रशा की सरकार को बर्खास्त करके उसे केन्द्रीय सरकार के अधीन कर लिया। जुलाई 1931 के चुनावों मे हिटलर का दल सर्वाधिक सीटें लेकर अव्वल रहा था । लोकसभा के सबसे बड़े दल के नेता हिटलर को प्रधानमंत्री बनाये जाने की मांग की जिससे हिडेनबर्ग ने स्वीकार नही किया। वान पापेन पुन: अल्पमत सरकार द्वारा शासन चलाने लगा। उसने आज्ञप्तियों द्वारा शासन चलाने की कोशिश की लेकिन विरोधी दलों के डर से उसने राष्ट्रपति की अनुमति से लोकसभा भंग कर दी । नव.1932 में हुए चुनावों में नाजी दल को सीटें कम मिली। साम्यवादियों से अधिक स्थान प्राप्त हुए। इसके बाद पापेन ने इस्तीफा दे दिया राष्ट्रपति ने हिटलर को सरकार गठित करने हेतु बुलाया लेकिन वह असीमित अधिकर चाहता था जिसे उसने मना कर दिया। अंत में वान श्लीकर को प्रधानमंत्री बनाया गया जिसे कुछ ही हफ्तों के बाद ही पदत्याग करना पड़ा। राष्ट्रपति ने जन.30,1933 में हिटलर को जर्मनी का प्रधानमंत्री बनाया। हिटलर ने प्रधानमंत्री का पद इस उद्देश्य से लिया था कि वह आजीवन सत्तारूढ़ रहेगा। कुछ वक्त बाद ही उसने अपनी स्थिति काफी मजबूत कर ली और वाइमर संविधान को निरस्त कर दिया और जर्मन के वाइमर गणतंत्र का विधिवत पतन हो गया।

9.11 पतन के कारण

जर्मनी के विशाल प्रांगण में गणतंत्र रूपी शिशु को प्रथम बार क्रीड़ा करने का अवसर प्राप्त हुआ था। गणतंत्र का वह शिशु चलने फिरने भी न पाया था कि उस पर चारों ओर से प्रहार होने लगे आर्थिक समस्या ने तो उसका भरण-पोषण ही दूभर कर दिया था। मान-समान उसे न घर में नसीब हुआ और न घर के बाहर। इसलिए चौदह वर्षों की अल्पावधि में ही उसे दम तोड़ देना पड़ा। जिसके निम्नांकित कारण थे-

वाइमर गणराज्य की स्थापना ऐसे समय में हुई थी जब जर्मनी सेनिक पराजय तथा पैरिस शान्ति सम्मेलन के निर्णयों के करण भौतिक एवं मानसिक दृष्टि से टूट चला था गणतंत्र की सरकार से बाध्य होकर वर्साय संधि से स्वीकार करना पड़ा था। कट्टर राष्ट्रवादी, भूतपूर्व सेनिक एवं नवयुवक वर्ग गणतंत्रवादी नेताओं की संधि का पालन करने तथा मित्र राष्ट्रों से मेल-

मिलाप की नीति से कायरता तथा देश के प्रति विश्वासघात मानता था तथा देश की दुर्दशा के लिए गणतंत्र सरकार को ही दोषी समझता था।

गणतंत्र का प्रयोग जर्मनी के लिए नवीन था । यह सही है कि 19 वीं सदी में यूरोप में राष्ट्रीयता के विकास के साथ-साथ गणतंत्र प्रणाली भी विकसित हुई थी। जर्मनी में राष्ट्रीयता का विकास तो अवश्य हुआ था जिसके कारण उसका एकीकरण सफल हो सका था लेकिन जर्मनी मे गणतंत्रीय शासन प्रणाली अपनी जड़ें नही जमा पाई थी। विलियम प्रथम एवं द्वितीय के शासन कल में राजतंत्र शासन प्रणाली ही प्रचलित रही। एवं गणतंत्र की लहर भी उन्होने अपने देश मे नहीं आने दी इन्ही कारणो से जर्मनी के नागरिक गणतंत्र प्रणाली से परिचित नही ले सके थे यह प्रणाली उनकी रुचि से बाहर थी जो इनके पूर्ण असहयोग के करण सफल नही हो सकी ।

गणतंत्र की असफलता का एक बहुत बड़ा कारण जर्मनी की बहुदलीय व्यवस्था थी। आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अपनाए जाने से वहां पर किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नही मिल पाता था इसलिए मिली-जुली सरकार बनानी पड़ती थी जो अधिक समय तक नही चल सकती थी और गणतंत्रीय सरकार कोई भी दीर्घकलीन कार्यक्रम पूरा नही कर पाती थी। कई बार तो राष्ट्रपति की आज्ञप्तियों द्वारा सरकार चलाने की नौबत आ जाती थी और इसका फयदा गणतंत्र विरोधी दलों ने भरपूर रूप से उठाया।

प्रशासकीय सेवाओं में कोई परिवर्तन नही करना भी इसकी असफलता का कारण था विभिन्न प्रशासकीय विभागों में विलियम द्वितीय के शासनकाल के अधिकारी कर्मचारी अपने पदों पर बने हुए थे जोकि गणतंत्र विरोधी एवं राजतंत्र के समर्थक थे। प्रशासनिक विभागों के असहयोग के कारण गणतंत्र सरकार, जिसके बिना कोई भी सरकार अपना अस्तित्व नही रख सकती थी, अपने उद्देश्यों में पूर्ण सफल नहीं हो सकी ।

विश्व व्यापी आर्थिक संकट भी वाइमर गणतंत्र के पतन का सबसे गंभीर कारण था। आर्थिक मंदी के कारण मुद्रा स्फीति दर काफी बढ़ गई थी जिससे आम नागरिकों को अनेक भीषण कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। आर्थिक मंदी के कारण जर्मनी की अर्थव्यवस्था काफी कमजोर हो चुकी थी बेरोजगारी भी सिर पर चढ़ बोलने लगी थी कई उद्योग धन्धे चौपट हो गये। लाखों मजदूर बेकार हो गये। पीड़ित व्यक्ति, श्रमिक, बेरोजगार नवयुवक उग्र राष्ट्रवादी दलों के समर्थक होने लगे। साम्यवाद का प्रभाव भी निरंतर बढ़ रहा था। जो अन्य दलो के साथ मिलकर गणतंत्रीय सरकार के लिए संकट पैदा कर रहे थे।

युद्ध समाप्ति के बाद जर्मन नागरिक अपनी भीषण गृह समस्याओं का सामना कर रहे थे उनके पास खाने को अन्न नही पहनने को कपड़ा नहीं रहने को घर नहीं रोजी के लिए काम नही था। उनका गणतंत्रीय शासन पद्धति में यह विश्वास नहीं था कि उनकी इन तमाम समस्याओं का समाधान यह सरकार क्या देगी। एक तरह से इस सरकार के प्रति उनका अविश्वास था। उनका मानना था कि एक शक्तिशाली एवं सुदृढ़ शासन प्रणाली ही जर्मनी में शान्ति व्यवस्था स्थापित कर सकती है उनकी समस्याओं का निराकरण कर सकती है एवं जर्मनी को पुन: महान राष्ट्रों की श्रेणी में खड़ा कर सकती है। नाजीवाद, साम्यवाद, एवं अन्य दक्षिण पंथी दलों ने जनता के सरकार के प्रति अविश्वास से और अधिक गहरा बना दिया।

उन्होंने कहा कि यदि इस सरकार का अन्त हो जाये तो हम देश को पुन: उसी अवस्था में पहुंचा सकते है जहां वह 1914 से पूर्व में था।

हिटलर का अभ्युदय भी इस गणतंत्रीय सरकार के पतन का महान काल था उसने जर्मन नागरिकों में नवीन आशा का संचार किया। उन्हें विश्वास हो गया था कि तिरस्कृत जर्मनी को पुन: सम्मानपूर्ण अवस्था दिलाने में वही सक्षम है । भूखों को रोटी और बेकारों को काम दिलाना उसी की सामर्थ्यता में निहित है। इस कारण हम देखते है कि ज्यों-ज्यों जर्मनी में चुनाव होते गये उसके समर्थकों की संख्या में भारी वृद्धि होती रही। आर्थिक अव्यवस्था उसकी उन्नति का महान कारण बनी और ज्योंही हिटलर ने जर्मनी के चांसलर का पद ग्रहण किया, त्योंही वाइमर गणतंत्रीय सरकार धराशायी हो गई ।

9.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लेंग्सम-दी वर्ल्ड सिंस, 1919 AD
2. क्रेग-यूरोप सिंस 1815 AD
3. एल्जबर्ग एण्ड एल्बजर्ग-यूरोप फ्रोम 1914 टू दी प्रेसेन्ट डे
4. एलेन बुलेक-हिटलर-ए स्टडी इन टिरैनी
5. कर्ल स्पिंकर- "जर्मनी फ्राम डिफीट टू डीफीट"

इकाई- 10

"समाजवाद का सिद्धांत-मार्क्स, लेनिन, माओत्सेतुंग"

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 सर्वहारा क्रांति का मार्क्सवादी सिद्धांत

10.3 द्वंदात्मक भौतिकवाद का मार्क्सवादी सिद्धांत

10.4 आर्थिक निर्धारणवाद का मार्क्सवादी सिद्धांत

10.5 वर्ग संघर्ष का मार्क्सवादी सिद्धांत और सर्वहारा वर्ग की तानाशाही

10.6 मार्क्स का राज्यवादी सिद्धांत

10.7 बिलगाव का मार्क्सवादी सिद्धांत

10.8 अतिरिक्त मूल्य का मार्क्सवादी सिद्धांत 10.8 लेनिन की पार्टी का सिद्धांत

10.9 द्वंदात्मक भौतिकवाद का लेनिनवादी सिद्धान्त

10.10 लेनिन का सर्वहारा वर्ग की क्रांति का सिद्धांत 10.11 लेनिन का राज्यवादी सिद्धांत

10.12 साम्राज्यवादी पूंजीवादी का लेनिनवादी सिद्धांत

10.13 लेनिन और नई आर्थिक नीति

10.14 माओत्से तुंग का एशियाई साम्यवादी सिद्धांत 10.15 माओत्से तुंग और कृषक वर्ग

10.17 माओत्सेतुंग की गुरिल्ला युद्ध की धारणा

10.18 माओत्सेतुंग का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत

10.19 माओत्सेतुंग और सांस्कृतिक क्रांति

10.20 सारांश

10.21 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में विश्व प्रसिद्ध राजनीतिक विचारकों- कार्ल मार्क्स-लेनिन और माओत्सेतुंग के राजनीतिक दर्शन की व्याख्या की गई है । इस इकाई को पढ़ने के बाद-

(अ) मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद के आगमन को रेखांकित किया जा सकेगा।

(ब) समाजवादी विचारो के मार्क्स से माओत्सेतुंग तक विकास से समझा जा सकेगा।

(स) राजनीतिक सिद्धांत मे समाजवाद से साम्यवाद के संक्रमण से जाना जा सकेगा।

10.1 प्रस्तावना

राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में मार्क्स द्वारा प्रथम बार समाजवाद के वैज्ञानिक सिद्धांतों के निर्माण से थामसमूर, राबर्ट आबेन, चार्ल्स फूरियर, सेंट सारमन तथा पौधों द्वारा प्रणीत काल्पनिक समाजवाद, वैज्ञानिक युग में प्रविष्ट हो गया। मार्क्स के राजनीतिक दर्शन के मुख्य स्रोत उसकी पुस्तकें ‘दास कैपीटल' तथा ‘कम्यूनिस्ट मैनीफैस्टो' है जो एंगेल्स के साथ

मिलकर लिखी गई। लेनिन ने एक तरफ मार्क्स की वैचारिक मान्यताओं को उनकी तार्किक परिणति दी, वहाँ दूसरी तरफ कुछ संशोधन, सुधार और नए वैचारिक आयाम साम्राज्यवादी पूँजीवाद के सिद्धांत मे खोले जिसमे पहली बार साम्राज्यवाद को पूँजीवाद की अंतिम अवस्था बताया या राज्यविहीन समाज का विचार रखा जो मार्क्स की वर्ग-विहीन समाज की अवधारणा का ही तार्किक परिणाम था।

लेनिन के विचारो में जिन्हें मार्क्सवाद लेनिनवाद कहा गया समाजवाद से साम्यवाद मे, संक्रमण स्पष्ट हुआ। लेनिन के विचार स्रोत मुख्यत: उसकी पुस्तक ' राज्य और क्रांति' तथा " मेटीयरलीज़्म और एम्पिरिओक्रिटिसिज़्म" है। माओ ने इनको आगे और विकसित और संशोधित किया किन्तु उसने मजदूरों के बजाय, जो मार्क्स व लेनिन की सर्वहारा क्रांति के केन्द्र थे, किसानों को केन्द्रीय स्थान दिया। इस प्रकार ये तीन अवस्थाएँ- मार्क्सवाद, लेनिनवाद और माओत्सेतुंग की विचारधारा समाजवादी विचारों के विकास के तीन महत्वपूर्ण चरण है निरंतरता और परिवर्तन की प्रक्रिया में।

10.2 सर्वहारा क्रांति का मार्क्सवादी सिद्धांत

मार्क्स का सामाजिक दर्शन उन्नीसवीं शताब्दी से होने वाले जिस महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन पर आधारित था और जिसके केन्द्र बिन्दु बना रहा था वह राजनीतिक स्वचेतना का उदय तथा औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक शक्ति। उसने पहली बार पूँजीवाद के मानवीय परिप्रेक्ष्य में एक ऐसी संस्था के रूप में देखा जो ऐसे वर्ग को उत्पन्न कर रही है जो पूर्णत : मजदूरी पर जीता है तथा स्वामियों से आर्थिक रूप से बंधा हुआ है। श्रमिकों की कार्य करने की शक्ति आर्थिक रूप से मूल्यावान (विक्रय योग्य वस्तु) कमोडिटी है जिसे प्रतियोगी बाजार में बेचा जाना चाहिए तथा इसे खरीदने वाला उसकी प्रचलित कीमत देने का एक मात्र उत्तरदायित्व रखता है। नियोजक व श्रमिक के उद्योग में इस प्रकार निर्धारित होने वाले सम्बंध मानवीय व नैतिक पहलुओं से बिल्कुल परे हो जाते है तथा केवल शक्ति इन सम्बन्धो का आधार बन जाती है। मार्क्स ने ऐसी स्थिति मे ठीक ही आधुनिक इतिहास के सर्वाधिक क्रांतिकारी तथ्य के दर्शन किए जिसमें एक ओर उत्पादन के साधनो के स्वामित्व से परिभाषित वर्ग है जिसकी मुख्य प्रेरणा है लाभ उत्पन्न करने की आवश्यकता तथा दूसरी ओर औद्योगिक श्रमिक वर्ग, जिसके पास व्यवस्थित जनसमूह के दबाव के अतिरिक्त और कोई ताकत नही है तथा जिसका लक्ष्य राजनीतिक स्वतंत्रता न हो कर जीवन स्तर कायम रखना व उसमें सुधार करना है। इस एतिहासिक तथ्य को समझते हुए मार्क्स ने पूँजीवाद के शाश्वत आर्थिक नियमों का परिणाम न मानकर आधुनिक समाज के विकास की एक अवस्था के रूप में समझा।

परस्पर विभिन्न वर्ग हितों के तथ्य से शुरुआत करते हुए मार्क्स ने राजनीतिक उदारवाद की मध्यवर्गीय विचारधारा के रूप में व्याख्या की तथा उभरते सर्वहारा वर्ग के लिए ऐसे सामाजिक दर्शन का निर्माण किया जो शक्ति के लिए संघर्ष में प्रयुक्त किए जाने के लिये उपयुक्त हो।

यह समूचा परियोजना हीगल के राज्य सिद्धांत की तरह फ़्रांसीसी क्रांति की ऐतिहासिक महत्ता के आंकलन पर आधारित था। हीगल की तरह मार्क्स का भी विश्वास था कि इस क्रांति नें सामन्तवादी समाज के विघटन का संकेत दे दिया है। किन्तु जहाँ हीगल की मान्यता थी कि

क्रांति राष्ट्र के उदय में रूपांतरित होगी वहाँ मार्क्स इसे और अधिक समग्र व तीव्र अति की प्रारम्भिक अवस्था के रूप में देखते थे। सामन्तवाद के उन्मूलन में मार्क्स ने मध्यमवर्ग की प्रभुता स्थापित होतें देखी तथा ऐसी राज व्यवस्था उत्पन्न हुई जिसमें मध्यमवर्ग की सत्ता और प्रभावी हुई। अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में तथा वर्तमान में आंशिक रूप से, यह व्यवस्था प्रजातांत्रिक गणराज्य होगी। फ्रांसीसी क्रांति इसलिए मूल रूप से एक राजनीतिक क्रांति थी। राजनीतिक क्रांति से परे अगली स्पष्ट क्रांति सामाजिक होनी थी। यह कार्य नवोदित सर्वहारा वर्ग का होना चाहिये जो मध्यमवर्ग को सत्ता से उसी प्रकार बाहर कर देगा जैसे मध्यमवर्ग ने सामन्त-वर्ग को किया। इस सर्वहारा वर्ग के पास भी अपना एक दर्शन होगा ठीक उसी तरह जैसे मध्यमवर्ग के पास मूलत: संपत्ति के प्राकृतिक अधिकर के दावे का दर्शन था और यह दर्शन बिना सम्पती के मानवीय अधिकरों के समाजवादी दावे पर आधारित होगा। चूंकि सर्वहारा वर्ग से नीचे सामाजिक संरचना में अन्य कोई वर्ग नही है । अत: शोषण के लिए कोई वर्ग नहीं होंगा। इसलिए सर्वहारा क्रांति केवल शोषण करने की शक्ति हस्तांतरित नही करेगी वरन् शोषण का उन्मूलन भी करेगी। यह ऐसे समाज की स्थापना की दिशा में प्रथम कदम होगा जिसमें सामाजिक वर्ग भेद न हो तथा मानव के पूर्ण स्व-अनुभूतिकरण के दस्तावेज के रूप में इतिहास की सच्ची शुरुआत हो। यह महान् मिशन था जिसको केन्द्र बनाकर मार्क्सवादी चिंतन प्रारम्भ हुआ ।

मार्क्स का विश्वास था कि इतिहास जिस दिशा में बढ़ रहा है जिसे उसने 'विकास की प्राकृतिक अवस्था' कहा उसको समझकर तथा इसमें अपनी स्थिति पर ही प्रभावी राजनीतिक क्रिया निर्भर है और स्थिति के अनुरूप ही कार्य भूमिका सम्भव है । सामाजिक इतिहास का उत्कर्ष सर्वहारा वर्ग के उदय में दिखाई पड़ता है तथा मार्क्स ने इस वर्ग के आधुनिक समाज में केंद्रीय स्थान प्राप्त करने के लिए उन्मुख पाया। स्वत: विकासमान समाज की चालक शक्ति आर्थिक वितरण की प्रणालियों में निहित है जिनसे ही सामाजिक वर्गों का निर्धारण होता है । प्रगति की प्रणाली सामाजिक वर्गो के विरोधी सम्बन्धों में है जो इतिहास में तार्किक रूप से आवश्यक है तथा उन अवस्थाओं में है जो तार्किक योजना के अनुसार एक के बाद एक पूर्वनिर्धारित लक्ष्य की और अग्रसर हों रही है। मानव सभ्यता का यह महा-प्रयाण व्यक्तियों को सहयोग करने, सेवा करने, कार्य के लिए प्रेरित करने तथा सर्वाधिक प्रभावी नैतिक त्याग के लिए आमंत्रित करता है। मार्क्स ने मजदूरों की परस्पर वफादारी के प्रति ध्यान आकर्षित किया। स्वहितों के स्थान पर वफादारी को, अधिकारों की जगह कर्तव्यों को संबोधित करते हुए मार्क्स ने किसी भावी पुरस्कार की नहीं बल्कि यह आशा दिखलाई कि निजी जीवन को इस महान् कार्य के प्रति समर्पित कर नया अर्थ दिया जा सकेगा। मार्क्स का दर्शन उसके अनुसार सामाजिक क्रांति की योजना व प्रेरणा दोनों है जो मजदूरों को गरीबी व शोषण से मुक्त करेंगी ।

इस विचारधारा का परिणाम था -द्वंदावाद या आर्थिक भौतिकवाद का सिद्धान्त जिसके अनुसार सामाजिक विकास आर्थिक उत्पादन शक्तियों के विकास पर निर्भर है । सामाजिक दर्शन के रूप मे, देखे जाने पर मार्क्सवाद मार्क्स की इसी मूलभूत मान्यता के अभिप्राय और वैधता पर आधारित है, जिसके अनुसार आर्थिक उत्पादन का विकास समाज के संस्थागत और वैचारिक अधिसंरचना का निर्धारण करता है ।

10.3 द्न्दात्मक भौतिकवाद का मार्क्सवादी सिद्धान्त

द्वंद्वात्मक भौतिकतावाद सम्बन्धी विचार पहली बार 1844 से 1848 के बीच में मार्क्स द्वारा लिखित पुस्तकों में मिलते है। द्वंद्ववाद मार्क्स के अनुसार पदार्थ की आधारभूत विशेषता है। द्वंद्ववाद को मार्क्स ने एक तार्किक पद्धति माना जो निरन्तर विकासमान पदार्थ तथा विकास की आवश्यकता को दर्शाता है। हीगल की तरह द्वंद्ववाद मार्क्स के लिए तार्किक नियम था। इसने विकास का आवश्यक सिद्धांत दिया जो एक साथ ही व्याख्या और मूल्यांकन के लिए उपयुक्त है। इसके साथ ही भौतिकवाद के मार्क्स के लिए अनेक महत्वपूर्ण निहितार्थ थे। प्रथमत: उसने इसे वैज्ञानिक के समान शब्द समझा जिसका अभिप्राय था कि समाज के इतिहास की प्रेरक शक्तियाँ उसकी भौतिक स्थितियाँ है।

दूसरे स्थान पर भौतिकवाद से मार्क्स का तात्पर्य-धर्म की उग्र अस्वीकृति, वस्तुत उग्र नास्तिकतावाद से था। चूंकि निर्विवाद रूप से, धर्म महत्वपूर्ण पारंपरिक सामाजिक शक्तियों में से एक है भौतिस्वाद मार्क्स और अन्य कई लोगो के लिए क्रांतिकारी अभिप्राय रखता है। यह जनता के लिए अफीम है, एक बेहोश करने वाला पेय है जो शोषित के शोषक का प्रतिरोध करने और अपनी स्थिति सुधारने की कोशिश करने से रोकता है। भौतिकवाद का मार्क्स और बाद के मार्क्सवादियों के लिए अर्थ था-एक धर्मविरोधी धर्मनिर्पेक्षतावाद जिसे किसी भी समग्र सामाजिक सुधार की पूर्व शर्त माना गया है। द्वंदवाद और भौतिकवाद से मार्क्स का तीसर अभिप्राय था-एक नई व दूरगामी परिणामो वाली क्रांति का सुझाव । फ्रांसिसी क्रांति ने वास्तव में, जैसाकि हीगल ने कहा, सामंतवाद का अन्त कर दिया था किन्तु मनुष्यों के प्राकृतिक अधिकर जिनका की क्रांतिकारियों ने दावा किया धार्मिक रुढ़िओं से अधिक पूर्व नही थे। न ही हीगल का दैवीय राज्य द्वंद्ववाद की अंतिम संवाद अवस्था ले सकता था। प्रजातात्रिक गणराज्य की स्वतंत्रता के परे, यद्यपि यह माध्यम वर्गीय समाज की सर्वोच्च अवस्था थी तथा अब तक विकसित तथ्य से परे समाज की एक उच्चतर अवस्था और है जिसमें राज्य पीछे रह जाएगा तथा इस उच्चतर अवस्था के प्राप्त करनें के लिए एक नई सामाजिक क्रांति की जरूरत है। यह पूर्व की राजनीतिक क्रांति से अलग है । पूर्व में क्रांतियों ने शक्ति का एक वर्ग से दूसरे वर्ग में हस्तांतरण किया है किन्तु उनसे शक्ति का मूलभूत दुरुपयोग-प्रभुत्व जमाना व शोषण करना नहीं रुका है। ईसाई धर्म की तरह राजनीतिक क्रांति व्यक्तियों को दोहरे जीवन के साथ काल्पनिक स्वतंत्रता व वास्तविक दासता में छोड़ती है। दासता की जड़ राजनीतिक नहीं है वरन् यह उस उत्पादन व्यवस्था जिसमे, एक वर्ग-उत्पादन साधनो पर एकाधिकार जमा लेता है तथा उस श्रम विभाजन में है जो निजी स्वामित्व से अनिवार्य हो जाता है। राजनीतिक क्रांति से परे इसलिए सामाजिक क्रांति आती है जो उत्पादन का समाजीकरण व्यक्ति को नागरिक से एकीकृत करेगी तथा एक बार में हमेशा के लिए सामाजिक असमानता व शोषण की जड़ों को उखाड़ फेकेंगे और जिस प्रकार राजनीतिक क्रांति के पीछे मध्य वर्ग कई सक्रिय शक्ति थी उसी प्रकार सर्वहारा वर्ग- जो मध्यवर्गीय वर्चस्व का परिणाम है तथा सबसे नीचे, जिसके नीचे कोई और वर्ग नही है, की वह शक्ति है जो अपने को मुक्त कर स्वतंत्र समाज की रचना तथा सामाजिक असमानता का अन्त कर वर्गविहीन समाज की स्थापना कर सकेगी। वर्गविहिन समाज इस प्रकार सामाजिक विकास

का अंतिम लक्ष्य तथा मध्यमवर्गीय क्रांति से प्राप्त मध्यमवर्गीय स्वतंत्रताओं से आगे का तार्किक परिणाम दोनो है।

10.4 आर्थिक निर्धारणवाद का मार्क्सवादी सिद्धांत

सामाजिक इतिहास की प्रेरक शक्तियाँ भौतिक है जिसका मार्क्स के लिए अभिप्राय था कि ये शक्तियाँ आर्थिक है। आर्थिक से मार्क्स का आशय है- ' आर्थिक उत्पादन का तरीका' क्योंकि वह पूर्णत: आश्वस्त था कि उत्पादन की हर व्यवस्था के साथ तदनुरूप सामाजिक उत्पादों की वितरण व्यवस्था होती है जिससे व्यवस्था क्रियारत रहती है और यह वितरण व्यवस्था आगे सामाजिक वर्गो की संरचना करती है जो प्रत्येक, व्यवस्था में उनकी स्थिति से निर्धारित होती है। जिस प्रणाली से समाज प्राकृतिक साधनों का उपयोग करता है तथा वस्तुओं का उत्पादन करता है वह मार्क्स के अनुसार व्यवस्था की चालक शक्ति है। समाज के उत्पादन का तरीका समय विशेष में उस समाज की राजनीतिक व सांस्कृतिक दशाओं को समझाता है तथा उत्पादन प्रणाली में होने वाले परिवर्तनों से तदनुसार राजनीति व संस्कृति मे होने वाले परिवर्तनों को समझा जाता है। मार्क्स के आर्थिक निर्धारणवाद के सिद्धान्त की यह मोटी रूपरेखा है जिस द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को ठोस सामाजिक व राजनीतिक अर्थ दिए गए। मार्क्स ने समाज का विकासवादी सिद्धांत ढूँढ निकाला जिसमें प्राकृतिक कानून की सम्पूर्ण व्यवस्था को विकास की एक विशिष्ट दशा के अनुकूल विचारधारा के रूप में समझा गया। सामाजिक विकास का सामान्य क्रम सामन्तवाद, पूँजीवाद और समाजवाद तथा प्रत्येक के अनुकूल राजनीतिक संगठन के रूपों मे है। फिर भी अति के मार्क्सवादी सिद्धांत ने इस मशीनरी को स्पष्ट इंगित किया जिससे राजनीतिक परिवर्तन होते है यह मशीनरी सामाजिक वर्गो के परस्पर हित तथा अपने हित मे प्रत्येक द्वारा समाज पर वर्चस्व जमाने के लिए किए जाने वाला संघर्ष है।

अपने समय की क्रांतियों मे, जैसाकि मार्क्स का विश्वास था, उसने एक नए प्रकार के क्रांतिकारी विद्रोह को देखा जिसका मुख्य केन्द्र राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्षरत मध्यम वर्ग न होकर वह श्रमिक वर्ग था, जो अपनी पतनशील अवस्था से चेतना प्राप्त कर रहा था तथा जो दिग्भ्रमित होकर राजनीतिक उपरी ढाँचो को बदलने की अपेक्षा सामाजिक असमानता के मूलभूत आर्थिक कारणो को बदलने का दृढ़ निश्चय किए हुए था।

" मैने जो कुछ नया किया यह सिद्ध किया कि-

(1) वर्गो का अस्तित्व उत्पादन कई विकास की विशिष्ट एतिहासिक अवस्थाओं से जुड़ा हुआ है ।

(2) वर्ग संघर्ष आवश्यक रूप से सर्वहारा की तानाशाही की ओर ले जाता है।

(3) यह सर्वहारा की तानाशाही सभी वर्गो के उन्मूलन और वर्गविहीन समाज कि तरफ ले जाने वाली संक्रमण अवस्था है।"

मार्क्स के तर्क का अंतिम चरण इसलिए यह है कि एक समय विशेष में ये वर्गो की संरचना अपने आप मे ऐतिहासिक परिणाम है जो आर्थिक उत्पादन शक्तियों, जिन्हें कि समाज उपयोग में ला सके, के साथ-साथ बदलती रहती है । इसे उसने अन्तिम कारण माना जिससे सम्पूर्ण समाज के सामाजिक वैधानिक और राजनीतिक ढाँचे को समझा जा सकता है तथा इस ढांचे में होने वाले परिवर्तनों की संगति भी अधिक उत्पादन के तरीको में होने वाले परिवर्तनों सें

बिठाई जानी चाहिए ।" सामाजिक उत्पादन मे लगे व्यक्ति ऐसे निश्चित सम्बन्धों का निर्माण करते है जो आवश्यक है तथा व्यक्तियों की इच्छा से स्वतंत्र उत्पादन के ये सम्बन्ध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास कि निश्चित अवस्था के अनुसार बनते है। उत्पादन के संबन्धो का कुल योग सें ही समाज कि आर्थिक संरचना वास्तविक बुनियाद बनती है जिसके ऊपर समाज कई कानूनी व राजनीतिक उपरी संरचना खडी रहती है और उसी के अनुरूप सामाजिक चेतना के निश्चित रूप होने है। भौतिक जीवन के उत्पादन का तरीका ही जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का सामान्य चरित्र निर्धारित करता है। व्यक्तियों की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नही करती अपितु इसके विपरीत व्यक्तियों का सामाजिक अस्तित्व ही उनकी चेतना को निर्धारित करना है। विकास कि एक निश्चित अवस्था मे समाज की उत्पादन की भौतिक शक्तियाँ और विद्यमान उत्पादन सम्बन्धों मे या इसी के लिए कानूनी शब्दावली में उन संपत्ति सम्बन्धों में जिनमें कि पूर्व में उत्पादन शक्तियाँ कार्यरत है, में टकराव होता है। उत्पादन शक्तियों के विकास के स्वरूपों मे उत्पादन संबंध बेडियों बन जाने है। तब सामाजिक क्रांति का युग आता है आर्थिक बुनियाद में बदलाव के साथ-साथ समग्र विशाल ऊपरी ढाँचा कमोबेश तीव्रता से रूपान्तरित हो जाता है। इस प्रकार के परिवर्तनों पर विचार करते समय उत्पादन की आर्थिक दशाओं में होने वाले भौतिक परिवर्तन तथा वैचारिक रूपों मे होने वाले कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक सौन्दर्य-परक और दार्शनिक परिवर्तनों के मध्य स्पष्ट अन्दर किया जाना चाहिए क्योकि प्रथम क्वार के परिवर्तनों का निर्धारण प्राकृतिक विज्ञानों जैसी निश्चितता के साथ किया जा सकता है। वैचारिक स्वरूपों मे व्यक्ति संघर्ष के बारे में जागरूक होते है और संघर्ष जारी रखते है.. कोई सामाजिक व्यवस्था तब तक अदृश्य नही होती जब तक कि उत्पादन शक्तियाँ उसकी क्षमता के मुताबिक विकसित न हो गई हो और नए उच्चतर उत्पादन सप्तम पुतने समाज के गर्भ में उनके अस्तित्व कई दशा से परिपक्व हो जाने से पूर्व प्रकट नहीं होते ।

इस प्रकार मानव जाति हमेशा ऐसी समस्याएँ उठाती है जिनहें वह हल कर सके क्योंकि और अधिक नजदीक से देखने पर हम सदैव यह पाएँगे कि समस्या तब ही उत्पन्न होती है जबकि उसके समाधान के लिए आवश्यक भौतिक स्थितियाँ विद्यमान है या कम से कम वें निर्माण की अवस्था में है।

इस उदाहरण में प्रस्तुत सांस्कृतिक विकास के मार्क्सवादी सिद्धांत मैं तब चार प्रमुख मान्यताएँ शामिल है। प्रथमत: यह अवस्थाओं का उत्तरोतर विकास क्रम है जिसमे उत्पादन और वस्तुओं के वितरण कई विशिष्ट प्रकार की प्रणाली का वर्चस्व रहता है। उत्पादन शक्तियों यह प्रणाली अपनी विशेषताओं तथा उसी के अनुरूप विचारधारा का उत्पन्न करती है जिसमें कानून राजनीति वे आदर्शो अथवा तथाकथित सभ्यता के आत्मिक उत्पाद जैसे धर्म, नैतिक सिद्धांत, कला तथा दर्शन शामिल होते है। दूसरे, यह समूची प्रक्रिया द्वंद्त्मक है जिसकी चालक शक्ति की पूर्ति आन्तरिक तनावों के उस संघर्ष से खेती है जो एक नई विकासमान उत्पादन व्यवस्था तथा पुरानी व्यवस्था के अनुरूप विद्यमान विचारधारा की विसंगतियों से उत्पन्न होता है। उत्पादन की एक नई व्यवस्था अपने आपको उस विरोधी वैचारिक वातावरण के मध्य पाती है जिसका कि बिखराव नई व्यवस्था की बढ़ोतरी से पूर्व ले जाना चाहिए। पुरानी व्यवस्था के

अनुरूप विचारधारा अधिकाधिक प्रति अन्धात्मक होती जाती है तथा आन्तरिक दबाव और तनाव बिखराव बिन्दु आने तक बढ़ते जाते है। नया सामाजिक वर्ग अपनी सामाजिक स्थिति व उत्पादन की नई व्यवस्था के अनुरूप विचारधारा के साथ पुतने वर्गो के साथ तीव्रतर संघर्ष में आमने सामने आ जाता है जिनके पास भी पुरातन व्यवस्था से घोषित विचारधारा मे, है। विकास का यह सामान्य तरीका इस प्रकार चक्रीय विकास की अवस्थाओं का एक के बाद एक में परिवर्तन होना है जिसमे उत्पादन की नई व्यवस्था व नई विचारधाराओं का धीरे-धीरे निर्माण होता है तथा क्रांति की अवस्थाओं मैं शक्तियों का सकेगा टूटकर नए प्रतिमान मैं पुन: रूप ग्रहण कर लेता है ।

तीसरे उत्पादन की शक्तियाँ के उत्पादन और औद्यौगिक उत्पादन के वितरण के तरीके उनके द्वितीयक वैचारिक परिणामों कई तुलना में सदैव प्राथमिक महत्व के है। भौतिक या आर्थिक शक्तियाँ वास्तविक या आधारभूत है जबकि वैचारिक सम्बन्ध केवल सतही और आभासी है। इस कोण से देखने पर शक्ति आर्थिक है न कि राजनीतिक तथा तजनीतिक शक्ति आर्थिक स्थिति का परिणाम है । चौथे, द्वंद्त्मक विकास प्रकटीकरण की या जीवन्त अनुभूति की एक आंतरिक प्रक्रिया है। किसी भी समाज मे अन्तनिहित उत्पादन शक्तियों, द्वंद्त्मक परिवर्तन व शक्तियाँ के नवीन रूप ग्रहण करने तक पूरी तरह विकसित होती है।

10.5 वर्ग संघर्ष का मार्क्सवादी सिद्धांत और सर्वहारा वर्ग की तानाशाही

फ्रांस के क्रांतिकारी आंदोलन पर दो प्रचार-पुस्तिकाओं ने आधुनिक औद्योगिक समाज मैं मार्क्स के वर्ग संरचना के सिद्धांत की रूप रेखा निर्धारित की । इस सिद्धांत ने मध्यम वर्ग, जिसके हित शहरी और व्यवसायिक थे तथा राजनीतिक रूप से जौ क्रांति की नागरिक व राजनीतिक स्वतंत्रताओं के प्रति समर्पित था तथा औद्यौगिक सर्वहारा वर्ग से जो मुख्यत : शहरी था किन्तु राजनीतिक स्वतंत्रता की अपेक्षा आर्थिक सुरक्षा से सम्बद्ध था अपना आधार बनाया। इन वर्गो को मार्क्स ने आधुनिक समाज की सक्रिय राजनीतिक शक्तियाँ माना जिनके मध्य मुख्यत: वर्ग संघर्ष चलता है इसलिए मुद्दा एक दूसरे पर आधिपत्य स्थापित करने का है। कृषक वर्ग तथा लघु पूँजीपति वर्ग जिन्हें इस सिद्धांत ने मान्यता दी कि मार्क्स ने राजनीतिक रूप से कुछ करने में असमर्थ समझा यद्यपि वे भी उचित स्थितियाँ मिलने पर दोनो सक्रिय वर्ग जो कुछ कर सकते है उसको प्रभावित कर सकने मे समर्थ हो सकती है । मार्क्स ने कृषक वर्ग और किसानों की विचारधारा को भी लघु पूँजीपति वर्गीय विचारधारा समझा। इस सिद्धांत के स्पष्टत: इस प्रकार लिया गया ताकि वह द्वंद्ववाद में सही बैठ सके, जिसमें मार्क्स को दो वर्गो का रखना आवश्यक हो गया जो कि पारस्परिक तनावों से परिवर्तन उत्पन्न करते है । इसी कारण यह वृहद् रूप से सबसे पूर्व की मान्यता थी यद्यपि इसमे औद्यौगिक क्रांति के क्रांतिकारी परिणामों की तीक्ष्ण स्पष्ट पर्यावलोकन भी निहित था। चूँकि द्वंद्ववाद दो प्रारूपों के बीच तार्किक विरोध से गतिमान होता है इसके विस्तार में मूल विचार से कुछ बदलाव हो सकता है तथा छोटे-छोटे, अन्तर महत्व नही रखते इस प्रकार यह सिद्धांत बड़े पैमाने पर समाज के अवलोकन को लेखबद्ध करता है न कि समाज का ब्योरेवार वर्णन। दो मुख्य वर्गो के अतिरिक्त जो शेष रहते है उन्हें

इन्ही में शामिल कर लिया जाता है, परिणाम स्वरूप जिन्हें मार्क्स लघु पूँजीपति वर्ग कहता है वह परस्पर विविधता पूर्ण. तत्वों का समुच्चय है जिनमें कोई समानता नही है सिवाय इसके कि वे पूँजीपति व श्रमिकों के रूप में वर्गीकृत होने का प्रतिरोध करते है। इस प्रकार यह सिद्धांत किसानों व रूक वर्ग को, स्वतंत्र दस्तकारों व छोटे दुकानदारों के साथ रखता है तथा इसमें पेशेवर लोगों या बढ़ते हुए सफेद पोश श्रमिकों के लिए कोई स्थान नही है जिनका काम उद्योगों ने उत्पन्न किया है। परिणामस्वरूप, यद्यपि मार्क्सवादियों ने सदैव वर्ग संघर्ष को राजनीतिक रणनीति का एक मात्र विश्वसनीय दिग्दर्शक माना किन्तु मार्क्स के सामाजिक वर्ग की धारणा अस्पष्टता उसकी भविष्यवाणियौ में हुई कुछ सबसे बुरी खामियों के लिए उतरदायी थी। उन्नीसवी शताब्दी के समूचे काल मे मार्क्सवादी सिद्धांतकारों व संगठनकर्ताओं के किसानों से निराशा थी ।

मार्क्सवाद मे इस प्रकार हम के वाद के रूप मे पाने है, संगठित श्रम प्रतिवाद है तथा वर्ग ही समाज संवाद है । मानवीय जीवन को मार्क्स पूँजीपति व मजदूरी कमाने वाले बुर्जुआ वर्ग व सर्वहारा वर्ग के मध्य कड़े संघर्ष के रूप मे चिन्तित करता है ।

साम्यवादी घोषणा पत्र में सर्वहारा की परिभाषा दी गई है- "समाज का वह वर्ग जो अपना जीवनयापन केवल अपना श्रम बेचकर करता है न कि पूँजी पर प्राप्त किसी लाभ सें। आधुनिक बोलचाल में सर्वहारा भूमिहीन व संपत्तिहीन जनता/जनसमूह है ।"

मार्क्स की मान्यता है कि जब तक वर्तमान मजदूरी प्रणाली जो न्यूनतम मजदूरी व अधिकतम लाभ पर आधारित है जारी रहती है तब तक पूँजीपतियों द्वारा मजदूरों का शोषण अनिवार्य रूप सें जारी रहेगा। इसके अलावा, पूँजीवाद की कार्यणाली के लिए एक तरफ संपत्तिहीन मजदूरों की संख्या में वृद्धि तथा कम सें कम व्यक्तियों के हाथो मे पूँजी का केन्द्रीकरण आवश्यक है। मार्क्स कहता है कि ऐसी दोहरी प्रक्रिया अकेले ही, पूँजीपतियों के सुरक्षित लाभ को सुनिश्चित करती है। यह प्रवृत्ति अनत: पूँजी के एकाधिकार तथा ऐसी मन्दी की ओर ले जाती है जिसकी तीव्रता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि जनता की क्रय शक्ति अधिकांशत: समाप्त हो जाती है। तेजी के दौर जो अवधि मे छोटे होते जाने है के बाद आर्थिक मंदी के दौर आते रहते है जब तक कि व्यवस्था पूँजीवादी सरकार को हटाकर सर्वहारा की तानाशाही का मार्ग प्रशस्त करते हुए अन्तिम रूप से नही टूटती स्वयं मार्क्स के सशक्त शब्दों में 'पूँजीवादी उत्पादन प्राकृतिक नियमों की अटलता के साथ अपने विरोध (Negation) को जम देता है अथवा पुन: 'अब तक के विद्यमान समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।'

पूँजीवादी व्यवस्था के अन्त को मार्क्स द्वारा संकेतित प्राकृतिक शक्तियों के कार्य पर दोड़ने की अपेक्षा मार्क्स और उसके अनुयायियो ने पूंजीपति वर्ग के सम्पूर्ण खात्मे तथा वर्गविहीन समाज की रचना की वकालत की,राज्य अपने आप धीरे-धीर समाप्त हो जाएगा क्योंकि वर्तमान मे यह लेनिन के शब्दों मे ' एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर शासन कायम रखनें की मशीन है। " श्रमिक वर्ग सेना व प्रशासनिक मशीनरी पर राज्य को समाप्त करने की दृष्टि से कब्जा जमाएगा तथा क्रांति द्वारा सर्वहारा के अधिनायकत्व की स्थापना करेगा।

10.6 राज्य का मार्क्सवादी सिद्धांत

राज्य को मार्क्स ने मुख्यत: ऐसी विशेषता पूर्ण संस्था माना जो व्यक्ति के अपने आप से विलगाव की स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है। अविवेक और रू शक्ति पर आधारित, दमनकारी प्रजातंत्र विरोधी राज्य से भिन्न मार्क्स ने वास्तविक प्रजातंत्र की संभावना की धारणा निर्मित की।1843 तक मार्क्स को राजनीतिक अर्थव्यवस्था के अपने गहन अध्ययन के परिणामस्वरूप वास्तविक प्रजातंत्र की अवधारणा की अपर्याप्तता का अहसास हो चला था अत: अब मार्क्स ने तर्क दिया कि समूचे राज्य के अंग राजा, संसद, और नौकरशाही वास्तव में सामाजिक शक्ति की परावलम्बी संरचनायें थी।

राज्य इसलिए एक रिक्त आदर्श वृत्त से अधिक और कुछ नही था जो सम्पूर्ण समाज से जुड़े होने का भ्रम पैदा किए हुए था। मार्क्स ने महसूस किया कि नागरिक समाज तथा राज्य का विरोध विद्यमान पूँजीवादी व्यवस्था लक्ष्य है न कि सामन्तवादी सामाजिक रचना का। हीगल के विपरीत मार्क्स ने सरकार के उस रूप का समर्थन किया जो नागरिक समाज और राज्य के अलगाव को समाप्त कर सके तथा उस रूप का समर्थन किया जो समाजीकृत तथा विलगाव ही मनुष्य की आन्तरिक प्रकृति के अनुरूप हो। मार्क्स ने निष्कर्ष निकला कि राज्य मूलत: व्यक्ति को नकारता है धर्म, कानून और नैतिकता की तरह मानवीय विलगाव की अभिव्यक्ति है तथा इन्हीं के समान एक विशिष्ट उत्पादन प्रणाली पर आधारित है। बुर्जुआराज्य, जिसने व्यक्ति के राजनीतिक नागरिक के रूप में स्वतंत्र करने का दावा किया था, ने व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में या नागरिक समाज के सदस्य के रूप मेें (आर्थिक क्षेत्र मे) दासता में छोड़ रखा है ।

विलगाव की स्थिति के कारण पूँजीवाद के अन्तर्गत राज्य समाज की समस्याओं के सुलझाने में असमर्थ है। मार्क्स ने स्पष्ट किया कि तथ्य अपने आप से समाप्त किए बिना उस अन्तविरोध को समाप्त नही कर सकता जो एक तरफ प्रशासन की भूमिका और उसके नेक इरादो तथा दूसरी तरफ इसके पास उपलब्ध साधनों के बीच है क्योंकि राज्य इसी अन्तविरोध पर निर्भर है। यह सार्वजनिक और निजी जीवन तथा सामान्य और विशिष्ट हितों के बीच विरोध पर आधारित है। प्रशासन को इसलिए अपने आपको औपचारिक व नकारात्मक गतिविधि तक सीमित रखना चाहिएं क्योंकि इसकी शक्ति वहाँ समाप्त हो जाएगी जहाँ नागरिक समाज और श्रम शुरु होते है।

यद्यपि मार्क्स ने किसी भी अवस्था में विलगाव पूर्ण परावलम्बी सामाजिक शक्ति के रूप में राज्य के इस सिद्धांत का परित्याग नही किया किन्तु बाद में, उसने अपना ध्यान समाज में राज्य के कार्यो के विश्लेषण पर क्रेन्द्रित किया। अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं में जहाँ उसने राज्य और समाज के अन्दर पर बल दिया वहाँ बाद मे उसने राज्य को समाज का एक हिस्सा समझा। 'जर्मन विचारधारा'' मे मार्क्स ने राज्य की उत्पत्ति श्रम विभाजन में खोजी। राज्य एक भ्रामक समुदाय था जो मार्क्स व ऐंगल्स के अनुसार परस्पर विरोधी वर्गो के मध्य होने वाले वास्तविक संघर्षों को आड़ देने का मकसद पूरा करता था। इतिहास के क्रम में उत्पादन की प्रत्येक प्रणाली ने एक विशिष्ट प्रकार के राज्य को, जो वर्चस्व प्राप्त आर्थिक वर्ग के हितों को आगे बढ़ा सके, जन्म दिया। राज्य के वर्गीय-आधिपत्य का यह सिद्धांत मार्क्स और एंगेल्स

द्वारा साम्यवादी घोषणा पत्र' में दोहराया गया जिसने यह मान्यता स्पष्ट रखी कि आधुनिक राज्य की कार्यपालिका समूचे पूँजीपति वर्ग के सामान्य मामलों की व्यवस्था सुनिश्चित करने वाली समिति (कमेटी) के अतिरिक्त और कुछ नही है।

यद्यपि कुछ निश्चित अपवाद थे फिर भी मार्क्स ने नौकरशाही को आधुनिक राज्य तंत्र का सर्वाधिक आवश्यक अंग माना। पूँजीवादी समाज मे राज्य का मुख्य कार्य श्रमिक वर्ग के आन्दोलन का दमन करना है । इस उद्देश्य के लिए राज्य को निरन्तर बढते हुए सेनिक नौकरशाही गठजोड़ की आवश्यकता है राज्य की प्रकृति, उत्पति तथा सारभूत विशेषता के बारे में मार्क्स और एंगेल्स ने निम्न महत्वपूर्ण बिन्दू रखे। (आ) तथ्य एक प्रादेशिक संगठन है । (ब) दूसरा बिन्दु सार्वजनिक शक्ति की स्थापना है। (स) सार्वजनिक शक्ति कायम रखने के लिए करों के रूप में नागरिकों से योगदान आवश्यक हो जाता है। चूँकि राज्य वर्गो के संघर्ष के मध्य अस्तित्व से आया अत: एक नियम के रूप में, यह सर्वाधिक प्रभुतासम्पन वर्ग का राज्य बन गया। आर्थिक रूप से प्रभुता सम्पन वर्ग; राज्य के माध्यम से, राजनीतिक रूप से शक्तिशाली वर्ग बन गया और इस प्रकार अधीन वर्गो को दबाने व शोषण करने के नए साधन इस वर्ग को प्राप्त हो गए ।

राज्य शाश्वत रूप से विद्यमान नहीं रहा है । ऐसें समाज भी थे जिनमे राज्य या राज्य शक्ति की कोई धारणा नही थी।

10.7 विलगाव का मार्क्सवादी सिद्धांत

पूँजीवादी समाज में मनुष्य की उत्पादन क्रिया इस तरह से विकृत हो जाती है कि वह विलगाव का कारण बने। मार्क्स ने विलगाव के चार पक्षों का वर्णन किया-कार्य से, कार्य के उत्पादन से, अपने साथियों से तथा मानवीय जाति-जीवन से विलगाव स्वतंत्रता की मूलभूत क्षति है क्योंकि यह स्वतंत्र रूप से मानव की सर्जनात्मक गतिविधियों को नकारना है।

पहले स्थान पर, पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में श्रमिक अपने श्रम के उत्पादनों पर स्वामित्व व नियंत्रण नहीं रखता सर्वहारा वर्ग उस धन का उपयोग नही करता जिसे स्वयं उत्पन्न करता है। इस प्रकार वह अपने उत्पादन से अलग हो जाता है। दूसरे मार्क्स यह स्वीकार करता है कि श्रमिक जो अपनी श्रम शक्ति मजदूरी के लिए बचाता है पूँजीपतियों के आदेश के अनुसार वस्तुओं का उत्पादन करता है। उसका कार्य न स्वैच्छिक है न स्वतंत्र क्योकि पूँजीपति मालिक द्वारा स्वामित्व रखे व चलायें गये कारखाने में कम कर वह अपनी; सर्जनात्मक प्ररेणा की सन्तुष्टि नही करता। निजी संपत्ति की पूँजीवादी संस्था श्रमिक को एक मजदूरी के गुलाम की स्थिति में ला देती है।

तीसरे, विलगाव पूर्ण श्रम श्रमिक वर्ग के अपने साथियों से मोहभंग का परिणाम उत्पन्न करता है। जिसका परिणाम रोजगार शुदा व बेरोजगार श्रमिकों की शत्रुता में होता है जो एक दूसरे को अपने दुश्मन के रूप में देखते है। प्रबन्धकों तथा स्वामियों में भी मजदूर इसी तरह की शत्रुतापूर्ण शक्तियाँ देखते है। जो उनके विलगाव पूर्ण श्रम से लाभ कमाती है चौथे उपरोक्त विलगाव के तीनों पक्ष से मनुष्य का अपनी मानव जाति व जीवन के प्रति मोह भंग उत्पन्न होता है। स्वकेन्द्रित और स्वचेतनामुक्त मोह भंग स्थिति में श्रमिक का अस्तित्व उसे मनुष्य की

समूची सांस्कृतिक विरासत से अलग-थलग कर देता है। जैसा कि मार्क्स ने स्पष्ट किया है श्रमिक वर्ग के दबाए गए सदस्य शायद ही मानव जाति की कलात्मक, वैज्ञानिक, साहित्यिक और अन्य सांस्कृतिक उपलब्धियों की जानकारी रखतें है। व्यक्ति इस प्रकार अपनी जाति के इतिहास से कट जाता है। अस्तित्व के इस स्कार के अमानवीकरण लेने से व्यक्ति अपनी विलगावपूर्ण क्रिया का दास हो जाता है ।

10.8 अतिरिक्त मूल्य का मार्क्सवादी सिद्धांत

मार्क्स उपयोग-मूल्य तथा विनिमय मूल्य में अन्तर करता है प्रथम मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि से बनता है और अत: वह है जिसमें दूसरी वस्तुओं का विनिमय किया जाता है। विनिमय मूल्य एक मात्र लगाए गए श्रम पर निर्भर करता है। मार्क्स पूँजी की परिभाषा अतिरिक्त मूल्य प्राप्त करने के लिए लगाए गए निजी स्वामित्व वाले उत्पादन साधनों के कुल योग के रूप में देता है। पूँजी का सारभूत लक्षण श्रम का शोषण है ।

मार्क्स के अनुसार श्रम सभी मूल्य उत्पन्न करता है तथा कच्चे माल और जीने लायक मजदूरी चुकाने के बाद जो कुछ बचता है वह लाभ, किराया व व्याज के रूप में पूँजीपति की जेब में चला जाता है इस अतिरिक्त मूल्य का उपयोग, पूँजीपति द्वारा उत्पादन का विस्तार कर और अधिक श्रम लगाकर और अधिक मात्रा में अतिरिक्त मूल्य प्राप्त करने के लिये किया जाता है ।

अतिरिक्त मूल्य उस मूल्य के रूप में परिभाषित किया जाता है जो जिन्दा रखने के लिए सामाजिक रूप से अनिवार्य मूल्य के परे, श्रम द्वारा उत्पन्न किया जाता है। पूँजीपतियो द्वारा इसका अधिग्रहण एक किस्म की चोरी है। अतिरिक्त मूल्य छिपा हुआ श्रम या वह श्रम है जिसका भुगतान नही किया जाता ।

मार्क्स एक महत्वपूर्ण मुहावरा "मंजदूरी का लौह नियम" भी उपयोग में लेता है । इस विचार के पीछे यह मान्यता है कि जो कुछ श्रमिक अपनी सेवाओं के बदले प्राप्त करता है वह अल्पांश मात्र है जो उसे शरीर और आत्मा को एक साथ रखने योग्य बनाता है तथा अगले दिन काम पर वापस जाने को प्रेरित करता है। इससे अधिक जो कुछ कमाया जाता है वह मालिक द्वारा अनुचित अधिग्रहण है।

मार्क्स और आगे दलील देता है पूँजीवाद का परिणाम पूँजी व वस्तुओं के अति उत्पादन मे होता है श्रम की घटती हुई क्रय शक्ति के कारण घरेलू बाजार संकुचित होता जाता है । तब विदेशी बाजार की शरण ली जाती है जिसका परिणाम साम्राज्यवाद और युद्ध होता है ।

10.9 लेनिन की पार्टी का सिद्धांत

लेनिन की प्रथम महत्वपूर्ण सेद्धान्तिक क्रांति जिसका शीर्षक "व्हाट इज टू बी डन" है का विषय साम्यवादी दल के संगठन का प्रश्न है। इसकी आधारभूत मान्यता जो लेनिन के दल का संगठनकारी सिद्धांत बनी, निम्न उदाहरण में सटीक रूप से व्यक्त की गई है- ' विश्वसनीय अनुभवी तथा कठिन परिश्रमी श्रमिकों से निर्मित एक लघु संगठित केन्द्रीय अंग, जिसके मुख्य जिलों, में उत्तरदायी एजेण्ट हो तथा जो क्रांतिकारियों के संगठन के साथ कठोर गोपनीयता-नियमों से जुड़ा हो, व्यापक जनसमर्थन के साथ तथा बिना किसी स्पष्ट नियम-संग्रह के, ट्रेड

यूनियन संगठन के सम्पूर्ण कार्यो को पूरा करेगा और विशेषकर इस प्रकार पूरा करेगा जैसे सामाजिक प्रजातंत्रवादी चाहते है "

लेनिन पूर्णत: सचेत था कि दलीय संगठन की उसकी अवधारणा मार्क्सवादी सेद्धान्तिक विचारधारा में अनुकूल परिवर्तन किए बिना तार्किक रूप से पुष्ट नही की जा सकती । तद्नुसार मान्य मार्क्सवादी सिद्धांतों में उसने एक चौकानेवाला संशोधन किया जिसकी व्यापक आलोचना हुई यद्यपि विशेषत: लेनिन ने इस संशोधन के पक्ष में साम्यवादी घोषणा पत्र' से उदाहरण दिए। लेनिन ने बल दिया कि सामान्य मार्क्सवादी तर्क ने श्रमिकों संघों की मानसिकता और विचारधारा को समाजवाद के साथ मिलाकर भ्रम उत्पन्न किया है। अन्तप्रेरणा से श्रमिक, श्रमिक संघवादी बनते है न कि समाजवादी और उनमें समाजवाद बाहर से मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों द्वारा लाया जाना है।

मार्क्स और एंगेल्स का समाजवादी दर्शन, जिसे लेनिन ने तर्क दिया ऐतिहासिक तथ्य के रूप में, पूँजीवादी बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा उत्पन्न किया गया था इसी समूह द्वारा इसे रूस में लाया गया। एक श्रमिक संघीय आन्दोलन अपने आपके लिए क्रातिकारी विचारधारा विकसित करने में अक्षम है।

इस प्रकार क्रांतिकारी दल का चयन श्रमिक संघों को मध्यम वर्गीय विचारधारा का शिकार बनने की इजाजत देने या समाजवादी बुद्धिजीवियों की विचारधारा को प्रविष्ट करने के बीच से मे है।

सर्वहारा वर्ग और उसकी विचारधारा के प्रति यह दृष्टिकोण लेनिन के चिन्तन की एक अवस्था को दर्शाता है जो अनेक संदर्भों से चली तथा इसे उसके व्यक्तिगत दर्शन एक विशेषता समझना चाहिए। आदतन, उसने चेतना तथा अन्तप्रेरणा' के मध्य भेद किया सामान्य रूप से चेतना का अर्थ है दूर दृष्टि व समझने की मानसिक शक्ति संगठित करने, योजना बनाने, अवसर गिनने, अवसरों का सही फायदा उठाने तथा विरोधी की चाल का पूर्वानुमान लगाने व उसे रोक देने की योग्यता। लेनिन का दल चेतना का मूर्तिकरण पूर्ण दूर दृष्टि का वैयक्तिकरण तथा प्रत्येक घटना में पूर्ण शस्त्र सज्जित होने का आदर्शी करण था। इसके विपरीत अंर्तचेतना का अर्थ है भावना, प्रेरणा, या इच्छा। सामाजिक स्तर पर महान् सामाजिक आन्दोलन का यह विशाल आधार है। जनता अन्तप्रेरणा' का मूर्तिमान रूप है जबकि दल चेतना' का। दल एक बुद्धिमान व निर्देशित विशिष्ट लघु समूह है जो अपने आपसे शक्तिहीन है किन्तु अनय शक्ति की क्षमता रखता है यदि वह सामाजिक जन असंतोष व जन कार्रवाई की विशाल प्रेरणा को उपयोग में ला सके।

'अन्तःप्रेरणा व चेतना' के लेनिन के भेद ने प्रजातंत्र को उसके द्वारा दिए गए अर्थ को भी रँग दिया। उसके दल का निर्माण एक विशिष्ट लघु समूह, बौद्धिक व नैतिक श्रेष्ठता के लिए चुने गये अल्पसंख्यक वर्ग श्रमिक वर्ग के सर्वाधिक उन्नत हिस्सा है और इसलिए उसके 'अग्रिम दस्ते' के रूप में किया गया। किन्तु लेनिन कुलीनतंत्र स्थापित करने की कोई धारणा नही रखता था। क्योकि दल का कार्य जो उसने सोचा यद्यपि जनता से भिन्न था किन्तु कभी भी जनता सें अलग या पृथक नही था जिसका कि दल को नेतृत्व करना था। लेनिन का दल का सिद्धांत

उसकी विचारधारा की धारणा से पूर्णत: मेल खाता है। दल की तीन मुख्य विशेषताएँ थी जो प्रत्येक जगह साम्यवादी दलो की विशिष्टता बन गई। प्रथमत: मार्क्सवादी में, दल के पास ज्ञान व अन्तदृष्टि की असाधारण रूप से शक्तिशाली प्रणाली-द्वंद्ववाद होना माना गया। दल अपने सदस्यो से उनके व्यक्तिगत हितो को संगठन के हितों के पूर्ण अधीन करने की माँग करता है। दूसरे सेद्धांतिक तौर पर सावधानी पूर्वक चुने गए तथा कठोरता पूर्वक अनुशासित लघु विशिष्ट समूह के रूप में साम्यवादी दल का निर्माण, मतदातओं को आश्वस्त और आकर्षित कर अपना प्रभाव आजमाने के लिए, एक जन संगठन के रूप में, कभी भी नही किया गया। दल ने बौद्धिक और नैतिक दोनों श्रेष्टताओं का दावा किया बौद्धिक इसलिए क्योकि इसमें दल के अद्वितीय विज्ञान के सिद्धांतों के कुशल विशेषज्ञ शामिल है तथा नैतिक इसलिए क्योंकि उसके सदस्य निस्वार्थ रूप से उस सामाजिक वर्ग के सौभाग्य को साकार करने में समर्पित है जिसका प्रतिनिधित्व करने का दल का ईरादा है तथा जो समाज व मानव जाति का भाग्य है । इसका आदर्श पूर्ण समर्पण है पहले क्रांति के प्रति तथा बाद में नए समाज की रचना के प्रति जिसका सुस्ता अति ने खोज दिया था। तीसरे लेनिन के दल का प्रारूप कसे हुए केन्द्रीय दून संगठन का था जिसमें किसी प्रकार का संघवाद या स्थानीय और निर्माणकारी ईकइयों के लिए स्वायत्ता शामिल नही थी। यह एक अर्द्ध सेनिक संगठन था जिसमे अधीनस्थ कड़े अनुशासन व आज्ञापालन के नियमों से बंधे हुए थे तथा नेता ऊपर से नीचे सत्ता के श्रेणी क्रम की जजीर से । यह अपने सदस्यों को उन नीति के विषयों पर वाद-विवाद की स्वतंत्रता दे सकता था जिसका कि अभी दल ने कोई निर्णय नही किया हो किन्तु एक बार निर्णय हो गया तो बिना प्रश्न के उसे स्वीकार करना व उसका अनुसरण किया जाना चाहिए। संगठन के इस रूप को लेनिन ने प्रजातांत्रिक केन्द्रीयकरण कहा। अपने जीवन के शुरु से आखिर तक लेनिन आश्वस्त था कि उसके आंदोलन की सफलता दो तलों पर निर्भर करती है दृढ़ संगठन और अनुशासन के माध्यम से भौतिक एकता तथा मार्क्सवाद एक धार्मिक मान्यता और विश्वास के माध्यम से सेद्धांतिक एकता पर इन दोनों आधार शिलाओं में उसका विश्वास कभी नही छूटा।

10.10 द्वंद्वत्मक भौतिकवाद का लेनिनवादी सिद्धांत

द्वंद्ववाद की अवधारणा ने लेनिन को आकर्षित किया। उसने न केवल मार्क्स में बल्कि हीगल में इसका अध्ययन किया जिसके तर्क से यह अवधारणा निकाली गई थी। उसका विश्वास था कि द्वंद्ववाद चाहिए' और यथार्थ' अथवा ज्ञान' और क्रिया' के सम्बन्धों के रहस्य को समझने की कुँजी है । लेनिन ने लिखा- द्वंद्ववाद सार्वभौमिक सर्वपक्षीय प्रत्येक वस्तु का प्रत्येक वस्तु के साथ जीवन्त जुड़ाव का विचार है जिका प्रतिबिम्ब मानव की अवधारणाओं में है। द्वंद्ववाद का लेनिन के लिए अभिप्राय था अमूर्तिकरण व अन्तदृष्टि या रूढ़िवादिता और सुधार का एक्य जिसको उसके नेतृत्व ने बार-बार दर्शाया। यूँ कहा जाए कि यह भूत और वर्तमान के बीच खड़ा हुआ है जो यह ज्ञान कराता है कि क्या हो रहा है तथा उस दृष्टि का, कि क्या सेना चाहिए। इस प्रकार यह लेनिन के लिए आश्चर्य का शाश्वत विषय, विज्ञान जैसी कोई वस्तु या शायद जादू जैसी कोई चीज थी, अन्तविरोधों और अवस्थाओं के माध्यम से विश्व इतिहास में हो रहे विकासों की जादुई कुंजी थी। तदनुसार जब द्वंद्ववाद अवस्था परिवर्तित करता है एक नेता व

एक दल को दिए गए अवसरों पर दाँव लगाने का साहस करना चाहिए । तथा उस निर्णायक क्षण में तुम्हें विजयी होना चाहिये। अप्रेल 1917 तक लेनिन यह विश्वास करने को तैयार था कि वह क्षण आ चुका है वह शक्ति हथियाने के लिए दृढ़ निश्चय कर चुका था जब यदि अवसर अनुकूल दिखे। उसकी द्वंद्ववाद, प्राकृतिक व सामाजिक विज्ञानों से उसका संबंध और भौतिकवाद, आदर्शवाद तथा वैज्ञानिक जैसी दार्शनिक प्रणालियों के साथ इसके संबंधों की विवेचना की गई।

लेनिन की व्याख्या में भौतिकवाद इस मान्यता में सिमट जाता है कि वस्तुनिष्ठ यथार्थ (पदार्थ) हमारे इसे जानने से स्वतंत्र होकर अस्तित्व में है आदर्शवाद को उसने मूल्यवाद के समान समझा। लेनिन ने नियमित रूप से 'आदर्शवाद ' तथा चर्चवाद ' का एक प्रयोग एक दूसरे के बदले किया जो एक शासक वर्ग को समर्थन देने व उसके शोषण को न्यायोचित ठहराने के लिए धर्म कई वकालत है। चूँकि भौतिकवाद और आदर्शवाद के बीच किसी प्रकार का साम्य नही है अत: मार्क्स का प्रत्यक्षवाद या तो गलत अनावश्यक ज्ञानप्रदर्शन है या बेईमान किस्म का आदर्शवाद है जो विज्ञान कई स्वीकृति के बहाने के नीचे चर्चवाद ' को छिपाए हुए है। समाज का एक वैज्ञानिक सिद्धांत आर्थिक व ऐतिहासिक विकास की सामान्य रूपरेखा खोज सकता है तथा द्वंद्वात्मक भौतिकवाद उस तर्क को उत्पन्न करवाता है जो इस विकास का कारण है। द्वंद्त्मक भौतिकवाद के ढाँचे में सामाजिक विज्ञानों की और व्यवस्थाएँ संभव है-एक मध्यम वर्ग के हित में उत्पन्न व दूसरी सर्वहारा वर्ग के हित में उत्पन्न। लेनिन ने दावा किया कि सर्वहारा का सामाजिक विज्ञान श्रेष्ठ इसलिए नही कि यह औपचारिक रूप से अधिक सही है या आनुभाविक दृष्टि से अधिक विश्वसनीय है। इसकी श्रेष्ठता इस तथ्य से बनती है कि यह भविष्य की लहर तथा सामाजिक प्रगति के अग्रिम मोर्चे पर उभरते हुए वर्ग की सम्पूर्णता का प्रतिनिधित्व करता है। मध्यम वर्ग, इसके विपरीत पिछवाड़े में सुरक्षा कार्रवाई कर रहा है, एक कोशिश में लगा हुआ है ताकि पूँजीवाद के पतन तथा साम्यवाद की निश्चित विजय को रोका जा सके या उसमें विलम्ब किया जाये। इसका विज्ञान सर्वोतम रूप में स्थायित्व पूर्ण या अधिक सच्चे अर्थो में अनैतिक व प्रतिगामी है।

10.11 लेनिन का सर्वहारा वर्ग की क्रांति का सिद्धांत

लेनिन ने रणनीति के रूप में सोचा तथा रूसी क्रांति मे अनेक शक्तियाँ किस प्रकार अपने आपको संगठित करेगी के बारे में वह पूर्व निर्णय लेने के लिए इच्छुक नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति की तरह उसने माना कि समाजवादी क्रांति पश्चिम के समर्थन पर निर्भर कर सकेगी तथा ट्रोटस्की के रूसी मध्यमवर्ग में अविश्वास से समान कारण से, वह पूर्णत: सहमत था। इसी के अनुसार मध्यमवर्गीय दल के साथ गठजोड़ की मेन्शेविक नीति उसे अवास्तविक लगी । लेनिन ने ट्रोटस्की पर कृषकों की अनदेखी करने का आरोप लगाया किन्तु दोनों, में अधिक से अधिक जोर देने का अन्तर था क्योकि यदि मध्यम वर्ग पर भरोशा नही किया जा सकता था तो केवल संभव विकल्प औद्योगिक मजदूर वर्ग के साथ का अस्थायी संयुक्त मोर्चा था और यह महत्वपूर्ण रणनीति-विचार था जिसे दोनों ने ग्रहण किया। लेनिन का विश्वास था कि क्रान्ति एक कृषक विद्रोह के साथ शुरु हो सकती है जिसका विकास श्रमिक वर्ग के नेतृत्व में एक वास्तविक

मध्यम वर्गीय क्रांति में हो सकता है। 1905 में उसने अपने कार्यक्रम को 'सर्वहारा और कृषक वर्ग की जनतात्रिक तानाशाही " का नाम दिया। पहला कदम कृषक वर्ग द्वारा बड़े भूस्वामियों को उन्मूलन करने का समर्थन देना था तथा सर्वहारा वर्ग का लक्ष्य सम्पूर्ण प्रजातांत्रिक गणराज्य के साथ-साथ इसलिये दबाव डालना था। लेनिन कई नीति भूमि के राष्ट्रीयकरण करने की थी जो किसानो को राज्य किराएदारों में बदल देगी तथा यह पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तरफ एक कदम होगा। समूहिक कृषि की तरफ भी यह एक कदम होगा। 1905 में लेनिन, मध्यमवर्गीय क्रांति पूरी करने की सोच रहा था।

केन्द्रीय विचार जिस पर लेनन ने बल दिया, वह कि कृषक वर्ग की क्रान्तिकारी सम्भावनाएँ थी जिसका उपयोग दल द्वारा किया जा सकता था। किन्तु ट्रोटस्की की तरह उसने माना कि इस प्रकार का गठजोड़ अस्थायी होना चाहिए । इसलिए उसने अपने सिद्धात को 'अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार की योजना' कहा। किसी बिन्दु पर, कृषक वर्ग के साथ गठजोड पश्चिमी यूरोप के सर्वहारा वर्ग के साथ गठजेड मे बदला जाएगा। इन दोनों गठजोडों के बीच कितना अन्तराल होगा इसको जानने का लेनिन ने बहाना नही किया। ट्रोटस्की से भी पूर्व उसने कभी-कभी इस अन्तराल के पूर्णत: अदृश्य होने की कल्पना की यद्यपि वह इस पर भी जोर देता रहा कि फिर भी दोनों क्रान्तियाँ भिन्न होगी । उसने कहा था कि-

"प्रजातांत्रिक क्रान्ति' से हम तुरन्त अपनी शक्ति की मात्रा के मुताबिक, वर्गीय चेतना युक्त व संगठित सर्वहरा की शक्ति एक समाजवादी क्रान्ति की तरफ जाना शुरु करेंगे। हम निरन्तर क्रान्ति के पक्ष में है। हम आधे रास्ते नहीं रुकेगे ।"

दस वर्ष बाद भी, जब प्रथम विश्व युद्ध के विस्फोट ने रूस में क्रान्ति को पुन: व्यवहारिक प्रश्न बना दिया, लेनिन अभी भी कह रहे थे कि कृषक वर्ग से गठजोड़ का, यूरोपीय सर्वहारा के गठजोड में परिवर्तन दोनों क्रान्तियों को परस्पर भिन्न-भिन्न रखे जाने के लिए पर्याप्त है। उसने कहा कि सर्वहारा के लिए वास्तविक स्वतंत्रता का पूँजीवादी स्वतंत्रता व पूँजीवादी प्रगति में से होकर जानेवाले मार्ग के सिवाय और कोई मार्ग नही हो सकता। लेनिन ऐसे कदम उठाने के लिए तैयार था जिन्हें वह या तो मध्यमवर्गीय क्रांति को पूर्ण करने या समाजवादी क्रांति का प्रारम्भ करने की दृष्टि से विवेक सम्मत ठहरा सके। एक तीक्ष्ण विभेदक रेखा खींचना अब महचपूर्ण नही था क्योंकि सर्वहारा और कृषक वर्ग के क्रान्तिकारी प्रजातांत्रिक अधिनायकत्व ने अनेक अवस्थाओं से उसे इस निकर्ष पर पहुंचाया कि दोनों क्रांतियां एक दूसरे में मिल जाएगी। स्विट्जरलैण्ड के निर्वास से रूस के मामलों को देखते हुए उसने शीघ्रता से निर्णय किया कि वास्तव में यह ही रूस में घटित हुआ है तथा क्रांति की प्रगति समाजवाद के संक्रमण होगी जैसी कि मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि प्रजातंत्र समाजवाद के लिए अनिवार्य अवस्था है। किन्तु लेनिन ने प्रजातंत्र से किसी स्वाभाविक या नैतिक मूल्य को नही जोडा। पर इसका अभिप्राय स्वतंत्र भाषण तथा स्वतंत्र सभा कि नागरिक स्वतंत्रतओं से लगाया जो वर्ग संघर्ष संचालित करने के लिए सर्वेत्तम क्षेत्र प्रदान करती है तथा जिनका असन्तोष भड़कने के सवाधिक तैयार साधनों के रूप में उपयोग किया जा सकता है अथवा इन प्रजातात्रिक संस्थाओं की कमजोरियाँ ऐसे व्यक्ति द्वारा उपयोग में लाई जा सकती है जिसका मकसद इन्ही को कमजोर करना है। थोड़े से प्रजातंत्र का केवल उपऋणात्मक महत्व है जिसे लेनिन ने अधकंशत

माना। उसके मूल्यों के पैमाने में केवल एक सर्वोच्च मूल्य था-क्रान्ति करना।बाकी के लिए, उसके नैतिक स्तर, अधिक मात्रा में कुशलता पूर्वक उपयोग के थे तथा यह जानना आश्चर्यकारी होगा कि प्रजातांत्रिक तरीकों के प्रति, उसकी सदैव से कोई गहरी नैतिक भावना नही रही तथा उनका उसे वास्तव में थोड़ा अनुभव था। प्रजातंत्र को 'अनिवार्य अवस्था' के रूप मे समझने का उसका ढंग उन संस्थाओं व व्यवहारों की प्रतिष्टा घटाने का था। जो पश्चिम में प्रजातांत्रिक समझी जाने लगी थी। सामाज्यवाद पर अपनी प्रचार-पुस्तिका में उसने इन्हें थोथा व कपट पूर्ण माना। रूस लौटने के कम से कम तीन महीने बाद तक वह इस बात पर जोर देता रहा कि संसदात्मक प्रजातांत्रिक गणराज्य पूँजीवादी राज्य का सवाधिक शक्तिशाली व उन्नत स्वरूप है, पर इस बात पर शीघ्र ही उसने बल दिया कि किसी भी पूँजीवादी सरकार को दमन की अधिकतम क्रूरता व असभ्यता की आवश्यकता होती है। यदि यह संवैधानिक स्वतंत्रताओं की गारण्टी को शामिल करती है तब भी ये धनिको के विशेषाधिकार है न कि मजदूरों के अधिकार। इस प्रकार बुर्जुआ प्रजातांत्रिक क्रान्ति उसके लिए, समाजवाद कें लक्ष्य की प्राप्ति का एक साधन थी । यह समाजवाद बुर्जुआ प्रजातंत्र व सर्वहारा के समाजवाद के परस्पर संघर्ष तथा सर्वाहरा समाजवाद की परस्पर प्रजातंत्र पर अंतिम विजय की प्रक्रिया से आएगा। कोई भी महत्वपूर्ण राजनीतिक मुद्दा सदैव दो संभव शासक वर्गो के हितों के संघर्ष से, उत्पन्न होता है दल वे यंत्र है जिनके द्वारा यह संघर्ष या वर्ग संघर्ष लड़ा जाता है। अन्त में अधिक शक्तिशाली वर्ग जीतता है । क्रातियों में, उसने कहा, ऐसे अनेक उदाहरण है जिनमें अधिक संगठित, अधिक वर्गचेतना युक्त अधिक शस्त्र सज्जित अल्पसंख्यक समुदाय ने अपनी इच्छा बहुसंख्यक समुदाय के ऊपर थोपी है। एक क्रांतिकारी दल सत्ता लेकर बाद में बहुमत प्राप्त करता है। यह साम्यवादी राज्य का सर्वहारा की तानाशाही के आगमन का संकेत है ताकि वर्गहीन व राज्यहीन समाज का मार्ग प्रशस्त हो।

10.12 लेनिन का राज्यवादी सिद्धांत

लेनिन कहता है कि राज्य का प्रत्येक रूप एक वर्ग संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता है । यहाँ तक कि क्रांति से लाया गया नया राज्य भी शक्ति और दमन का यंत्र होने के लिए बाध्य है। सर्वहारा वर्ग जब वास्तविक साम्यवाद लाता है केवल तब ही राज्य धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा। उसने साम्यवाद की दो अवस्थाएँ बतालाई। पहली निम्न अवस्था को उसने दूसरी अवस्था साम्यवाद सें भिन्न समाजवाद कहा। प्रथम अवस्था में आधारभूत रूप से शोषण का उन्मूलन कर दिया जाएगा किन्तु पूर्ण रूप सें नही, द्वितीय, अधिक पूर्ण अवस्था में आवश्यकतानुसार पारिश्रमिक होगा तथा राज्य पूर्णत: समाप्त हो जाएगा।

क्रांति, शोषण, प्रजातंत्र व साम्यवाद पर हम लेनिन को उद्धरित करते है। 'पूँजीवादी समाज मे हम ऐसा प्रजातंत्र रखते है जो सीमित, झूठा, दयनीय तथा अल्पसंख्यक वर्ग के लिए होता है। सर्वहारा का अधिनायकत्व, साम्यवाद में संक्रमण का काल, पहली बार,बहूसंख्यक लोगो के लिए प्रजातंत्र उत्पन्न करेगा तथा साथ ही साथ शोषकों द्वारा निर्मित अल्पसंख्यक वर्ग का आवश्यक दमन करेगा। पूँजीवाद में एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का दमन, अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा बहुसंख्यक समुदाय के दमन का राज्य एक विशेष यन्त्र है। पूँजीवाद से समाजवाद के

संक्रमण काल में दमन अब भी जरूरी है किन्तु इस मामले में यह शोषितों के बहुसंख्यक समुदाय द्वारा शोषकों के अल्पसंख्यक समुदाय का दमन है ।

लेनिन की शिक्षाओं के अनुसार बताया गया अदर्श न केवल वर्गहीन समाज है बल्कि राज्यहीन समाज भी। केवल साम्यवाद से राज्य पूर्णत: अनावश्यक हो जाएगा क्योंकि दमन के लिए कोई भी नही रहेगा। कोई वर्ग या जनसंख्या के निश्चित भाग के साथ व्यवस्थित संघर्ष के अर्थ में कोई भी नही रहेगा। लेनिन कहता है कि राज्य के पूर्ण विलोप के लिए पूर्ण साम्यवाद आवश्यक है। जब तक राज्य विद्यमान है कोई स्वतंत्रता नही हो सकती जहाँ स्वतंत्रता है वहाँ कोई राज्य नही रहेगा। राज्य धीरे-धीरे मुरझा जाएगा जब यह सूत्र साकार लेगा-प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार तथा प्रत्येक के उसकी आवश्यकता के अनुसार।

10.13 साम्राज्यवादी पूंजीवाद का लेनिनवादी सिद्धांत

प्रथम विश्व युद्ध की शुरूआत तथा खास कर पश्चिमी यूरोप की समाजवादी पार्टियों द्वारा साम्राज्यवादी युद्ध के समर्थन ने लेनिन के चिंतन को एक नई दिशा में मोड़ दिया। 1914 तथा रूस की क्रांन्ति शुरुआत के बीच के वर्ष लेनिन द्वारा पूँजीवाद के साम्राज्यवादी विकास तथा समाजवादी क्रांति पर पड़ने वाले इसके प्रभाव के अध्ययन में व्यतीत हुए। मेहनतकश वर्ग तथा रूस कई मेहनतकश जनता के सभी लोगो के दृष्टिकोण से लेनिन ने माना कि जार के राजतंत्र व सेना की हार एक छोटी-बुराई है। उसका नारा था साम्राज्यवादी युद्ध को नागरिक-युद्ध में अर्थात् सर्वहारा क्रांति में बदल डालो । विकास की अनिवार्यता श्रमिकवर्ग की बढ़ती गरीबी तथा निम्न मध्यम वर्ग की स्थिति मजदूरो जैसी हो जाने की मार्क्स की भविष्य वाणियों स्पष्टत: सच नही हुई और यद्यपि उसने यह विश्वास करना पसन्द किया कि दल के नेताओं ने सर्वहारा वर्ग को धोखा दिया है किन्तु लेनिन इस तथ्य से आँखें नही मूँद सकता था कि पश्चिमी यूरोप के श्रमिकों ने न केवल इस तरह के धोखा देने की इजाजत दी है बल्कि एक अर्थ में इस धोखे का स्वागत किया है। सर्वहारा वर्ग जौ कि मार्क्सवाद के अनुसार अन्तर्निहित रूप सें क्रांति है, किसी भी प्रकार से क्रांति सिद्ध नही हुआ है और यह सब वही था जो बर्नस्ट्रीन के तर्क में निहित था। यहाँ तब एक विसंगति थी जिसका सामना लेनिन को करना चाहिए । ऐसा कैसा हुआ कि उन देशों में जहाँ पूँजीवाद सर्वाधिक उन्नत था पूँजीवादी औद्योगिक वाद ने क्रांति सर्वहारा वर्ग को जन्म नही दिया? चूँकि उसका सिद्धांत छोड़ने का कोई इरादा नही था उसे यह सिद्ध करना चाहिए था कि मार्क्सवाद अभी भी सर्वहारा कवि को आवश्यक दर्शाता है। तब उसे यह दिखाना चाहिए था कि पश्चिमी युरोप का सर्वहारा वर्ग उन एत्तरवर्ती लहरों में फँस गया जो विश्वव्यापी पूँजीवादी के विकास में संभव है तथा समय पर विकास का सामान्यक्रम पुन: प्रारम्भ हो जाएगा। 1915 और 1916 में लेनिन की मुख्य कृतियों का यही उद्देश्य था और ये उसके कार्य की इस सरकारी परिभाषा का समर्थन थी कि 'लेनिनवाद साम्राज्यवाद के युग का मार्क्सवाद है।"

उसने माना कि एकाधिकरवादी और वित्तीय पूँजीवाद स्वतंत्र प्रतियोगी पूँजीवाद का तार्किक विकास है, राजनीतिक साम्राज्यवाद एकाधिकारवादी पूँजीवाद का तार्किक विकास है। इस

प्रकार साम्राज्यवाद पूँजीवादी विकास की सर्वोच्च अवस्था है और यह संक्रमणकालीन अवस्था है जो उच्चतर साम्यवादी अर्थव्यवस्था व समाज की ओर ले जाती है ।

साम्राज्यवाद सामान्यत : पूँजीवाद की मूल विशेषताओं के विकास व उनकी प्रत्यक्ष निरन्तरता के रूप में उभरा पर पूँजीवाद इसके विकास की एक निश्चित और बहुत उच्च अवस्था में जाकर, पूँजीवादी साम्राज्यवाद बना जब उसकी मूलभूत विशेषताएँ इनकी विरोधी विशेषताओं में बदल गई, जब पूँजीवाद से उच्चतर सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के सक्रमण काल के लक्षण स्वरूप धारण करने लगे तथा इसी प्रकार प्रकट होने लगे।'

लेनिन का विश्वास था कि यह सिद्धांत न केवल युद्ध की बल्कि, उन्नत औद्योगिक अर्थव्यवस्था वाले देशों में संभावित सर्वहारा क्रांतिकारी की मार्क्स की भविष्यवाणी की असफलता की व्याख्या भी करता है । पिछड़े लोगों के शोषण से प्राप्त ऊँचे लाभों से पूँजीपति अपने घर पर श्रमशक्ति को ऊँची मजदूरी चुकाने में समर्थ हो गए। परिणाम स्वरूप यूरोप के श्रम ने और खासकर कुशल श्रम ने ऊँचे उठते हुए जीवन स्तर का आनन्द लिया। यह निश्चित रूप से उपनिवेश व अविकसित देशों में प्रयुक्त ऊँचे दर्जे के शोषण की कीमत पर खरीदा गया था। प्रभाव स्वरूप यूरोपीय श्रमिक वर्ग विश्वव्यापी शोषण का साझेदार बन गया तथा कुछ मात्रा में इसे हथियाए गए माल का हिस्सा मिला, अस्थाई तौर पर व स्थानीय रूप से। इसलिए वर्ग संघर्ष की तीव्रता कम हो गई अथवा पूँजीवाद ने इसको अन्तर्निहित विरोधों के प्रभावों को स्थगित करने का एक सस्ता ढूँढ निकाला। इसका परिणाम यूरोपिय इतिहास का वह युग था जिसे लेनिन ने 1871[पेरिस कम्यून' मे हुए अन्तिम सर्वहारा विद्रोह की तारीख 7] तथा 1914 के बीच में निर्धारित किया जबकि यूरोपिय मजदूर वर्ग लघुपूँजीवादी मानसिकता' से ग्रसित हुआ। यह संशोधन पूंजी वादियों के इस श्रम का शिकार हुआ कि पूँजीपतियों तथा मजदूरों के हितों में सामंजस्य संभव है तथा आर्थिक विकास शांतिपूर्ण व सुधारवादी तरीकों से किया जा सकता है। वर्ष 1914 में लेनिन ने कहा, सर्वहारा वर्ग सर्वोत्तम स्थिति वाली कुशल संघ बद्ध श्रमिकों की अल्पसंख्या के उदारवादी अर्थात बुर्जुआ राजनीति में चले जाने से पूर्णत: असंगठित हतोत्साहित था। स्वाभाविक रूप से उसे इसने पतन माना। यूरोपिय श्रमिक वर्ग परावलम्बी हो गया था। पूँजीवाद भी पतनशील हो गया। यह अब रचनात्मक सामाजिक शक्ति नही रहा जैसा कि 1871 से पूर्व था तथा पूँजीपति वर्ग एक पतनोन्मुख व प्रतिगामी वर्ग बन चुका था । उसने पुन: तर्क दिया कि यूरोपिय श्रमिक वर्ग अभी भी क्रातिकारी है तथा जैसा कि उसने कहा, समाजवादी क्रांति युद्ध द्वारा आगे बढ़ाई जा रही है। पूँजी के निर्यात से साम्राज्यवाद अविकसित देशों में औद्योगिकवाद को तेज कर रहा है और इसलिए पूँजीवाद का प्रसार कर रहा है। पूँजीवाद की मूल प्रकृति बदली नहीं है और न बदली जा सकती है । इसके अन्तर्विरोध समाप्त नही हुए केवल बदल गए है ताकि नए रूप पुन: प्रकट हो। साम्राज्यवादी शासक वर्ग और मजदूर प्रतियोगी हितों के साथ-साथ राष्ट्रीय समूहों में बँट गया है। विशिष्ट रूप में लेनिन का प्रकटतः विश्वास था कि ये अन्तर्विरोध अब दो रूप लेंगे। प्रथमत:पूँजीवाद मंदी और संकटों को रोकने व नियंत्रण करने में कभी भी समर्थ नही होगा जिनकी उसने अधिक आवृति व तीक्षणता में अपेक्षा की। ये पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की न जीती जा सकने वाली कमजोरी है। दूसरे उसने अधिक

निश्चितता के साथ दलील दी कि साम्राज्यवादी देश युद्ध से नही बच सकते तथा 1914 में शुरू हुआ युद्ध केवल युद्धों की अनवरत श्रृंखला में साम्राज्यविस्तार के लिए राष्ट्रीय प्रतिद्वंदियों में पहला युद्ध है। इस प्रकार लेनिन ने जो सुझाया, यद्यपि उसे उसने विकसित नही किया जो परवर्ती साम्यवादियों के लिए स्तरीय प्रमाण बन गए कि पूँजीवाद का पतन अवश्यम्भावी है। लगातार होने वाले युद्ध व मंदी इसकी शक्ति को निचोड़ देंगे। मार्क्स के निष्कर्ष इस प्रकार आधारभूत रूप से पुर्नस्थापित किये गए ।

10.14 लेनिन और नई आर्थिक नीति

लेनिन ने पाया कि 1917- 27 के युद्ध साम्यवाद ने जनता के कुछ तत्वों में तीव्र विरोध को हवा दी है क्योंकि इसमें पूँजीपतियों के गढ़ को सामने से आक्रमण कर लेने की कोशिश की गई थी । इस आर्थिक आक्रमण में, लेनिन ने स्वीकर किया, साम्यवादी दल बिना अपने आधार को उपलब्ध किए, काफी आगे निकल गया। अत: अस्थाई तौर पर पिछवाड़े की सुरक्षा के लिए पीछे लौटना जरूरी था किन्तु यह पीछे हटना कुछ समय के लिए ही था ताकि गढ़ पर सीधे आक्रमण को अप्रत्याशित हमले के धीमे तरीके में परिवर्तित किया जा सके तथा शक्ति बटोरकर समय पर पुन: आक्रमण किया जा सके। इस नीति को उसने नई आर्थिक नीति (1924) कहा जिसने पूँजीवाद को कुछ अस्थायी रियायते दी । वैयक्तिक पहल तथा व्यक्तिगत लाभ कुछ सीमाओं में पुन: लागू किए गए। नई आर्थिक नीति (नेप) की निम्न विशेषताएँ थी?

1 अतिरिक्त उत्पादन के स्थान पर कर का अधिरोपण प्रत्येक किसान की वस्तुओं में एक निर्धारित कर का भुगतान राज्य को करना था 1924 के बाद नकद भुगतान करना था। वह अपने उत्पादन का मालिक था तथा उसे बाजार में बेचने के लिए स्वतंत्र था ।

2 राज्य के स्वामित्व के स्थान पर निजी स्वामित्व नई आर्थिक नीति में केवल बड़े कारखाने राष्ट्रीयकृत किए गए। छोटे कारखाने निजी स्वामित्व में रहे । विदेशियों को कारखाने खोलने या बड़े पैमाने पर खेती करने की अनुमति दी गई। वे अपने लाभ का एक हिस्सा रख सकते थे तथा राज्य को विदेशी फार्म से उत्पाद खरीदने का हक था यदि राज्य ऐसा करना चाहे।

3 निजी व्यापार : सरकार ने राज्य द्वारा व्यापार के साथ निजी व्यापार की अनुमति दी। उसने उपभोक्ता सहकारी समाजों की स्थापना को भी प्रोत्साहन दिया।

4 प्रबन्धक द्वारा कारखाने का प्रबन्ध : श्रमिकों की अपनी समितियों की सहायता से कारखाने का प्रबन्ध करने के लिए अनुभवी प्रबन्धक नियुक्त किए गए।

विपक्ष ने नई आर्थिक नीति की स्थायी वापसी के रूप में आलोचना की किन्तु यह गलत थी क्योंकि यह केवल अस्थायी रूप से पीछे हटना था, एक रणनीति विषय था जैसा कि हम ऊपर देख चुके है। वास्तव में केवल एक वर्ष बाद लेनिन ने 11 वी दलीय कांग्रेस में घोषणा की कि 'पीछे लौटना' अब समाप्त हो चुका है। तथा उसने यह नारा दिया- 'निजी पूंजी पर हमले की तैयारी करो' विपक्ष ने नई आर्थिक नीति का यह रणनीति परक आयाम कभी नही समझा।

10.15 माओत्सेतुंग का ' एशियाई साम्यवादी ' का सिद्धांत

माओत्सेतुंग की महान् उपलब्धि मार्क्सवाद को यूरोपिय से एशियाई स्वरूप में परिवर्तित करना रही है । मार्क्स और लेनिन यूरोपिय थे उन्होंने यूरोपिय भाषा, यूरोप के इतिहास और समस्याओं के बारे में लिखा तथा शायद कभी ही एशिया और चीन की चर्चा की हो। मार्क्सवाद के मूल सिद्धांत निस्सन्देह सभी देशों पर लागू किए जा सकते है किन्तु उनकी सामान्य सत्यता को चीन में ठोस क्रांतिकारी व्यवहार पर लागू करना एक मुश्किल काम है। माओत्सेतुंग चीनी थे अत: वे चीनी समस्याओं की व्याख्या करते है तथा चीनी लोगों का संघर्ष में विजय के लिए मार्गदर्शन करते है। वे मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धांतों का उपयोग चीनी इतिहास व चीन की व्यवहारिक समस्याओं को व्याख्या करने के लिए करते है। वे पहले व्यक्ति थे जो ऐसा करने में सफल हुए। उन्होने मार्क्सवाद के चीनी या एशियाई रूप की रचना की।

10.16 माओत्सेतुँग और कृषक वर्ग

जहाँ लेनिन ने उन समाजों में जहाँ भारी औद्योगिकरण न हो कृषक वर्ग की महत्ता स्वीकार की वहाँ यह माओ था जिसने क्रांतिकारी रणनीति में कृषक वर्ग को केन्द्रीय स्थान पर रखा माओ यह सुझाता हुआ प्रतीत होता है कि क्रांति के अग्रिम दस्ते-सर्वहारा वर्ग को कृषक वर्ग द्वारा हटा दिया जाए-ऐसी स्थिति जो मार्क्सवादियों की नजर में सिद्धांत विरोधी है। गरीब किसानों के बिना कोई क्रांति नही हो सकती है। उनके अस्वीकार करने का अर्थ क्रांति को अस्वीकार करना है। उन पर आक्रमण करने का तात्पर्य क्रांति पर आक्रमण करना है। कृषक वर्ग पर माओ का बल उसका व्यक्तिगत विश्वास था या मार्क्सवाद लेनिनवादी चिंतन का जागरूक प्रयोग। इसकी जड़ निश्चित रूप से चीनी स्थिति मे थी । माओ की अधिकांश प्रेरणा चीनी इतिहास से उत्पन्न हुई । किसानों के विशाल संघर्षों ने, कृषक विद्रोहों और युद्धों ने अकेले चीन के सामन्तवादी समाज की वास्तविक प्रेरक शक्ति का निर्माण किया।

10.17 माओत्सेतुंग की गुरिल्ला युद्ध की धारणा

मतों के अनुसार उचित रणनीति शहरों को देहातों की तरह से घेरने की थी जिसमें सुस्थापित क्रांतिकारी आधार केन्द्र हो। चूंकि साम्राज्यवाद और प्रतिक्रिया की शक्तियाँ शहरों में घिरी रहती है संघर्ष जारी रखने मे, सामान्यत: शक्तिशाली शत्रु के साथ निर्णायक युद्ध को टालने का विचार योग्य समय लगता है। जब क्रांतिकारी शक्तियाँ अभी भी कमजोर है तो पिछड़े गाँवों का उन्नत सुगठित आधार भूत क्षेत्रों तथा विशाल सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक और सांस्कृतिक गढ़ी में निर्माण करना अनिवार्य था जिससे कि वें उस भयानक शत्रु से लड़ सके जो ग्रामीण जिलों पर आक्रमण करने के लिए शहरों का उपयोग करता है। माओ का विश्वास था कि अन्तत: परिस्थितियाँ ग्रामीण केन्द्रों सें संचालित क्रांतिकारी शक्तियों की सम्पूर्ण विजय के लिए उपयुक्त होगी । थोड़े राजनीतिक विचार को और वास्तव मे थोड़े साम्यवादी नेताओं ने युद्ध और सेनिक शक्ति ने इतनी अधिक महत्ता प्रदान की। जो कोई भी राज्य की राजनीतिक शक्ति पर अधिपत्य जमाना चाहता है और उसे कायम रखना चाहता है उसके पास सशक्त सेना होनी चाहिए तथा 'राजनीतिक शक्ति बन्दूक की नेक से उत्पन्न होती है। माओ प्राथमिक रूप से साधारण अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ में युद्ध की बात नही करता बल्कि नागरिक युद्ध की बात करता है

जिसका उद्देश्य स्पष्टत: राजनीतिक अर्थात भू-भाग शासन करने की शक्ति को हथियाना है। दुशमन आगे बढ़ता है, हम पीछे हटते है दुश्मन विश्राम करता है हम उसे परेशान करते है, दुश्मन थक जाता है हम आक्रमण करते है, दुश्मन पीछे हटता है हम पीछा करते है यह माओ का राजनीतिक आक्रमण कई प्रारम्भिक गुरिल्ला अवस्था सूत्र है जिसका कि वह वर्णन करता है। माओ का उद्देश्य सुस्थापित, सुसज्जित शहरो पर आधारित शासन को उखाड़ फेंकना है। यह रूष्ट है कि राजनीतिक उद्देश्य अलग-थलग विजयों का समूह नही है बल्कि एक किस्म की धीरे-धीरे काटने की प्रक्रिया है जिससे सरकार कमजोर होती जाती है तथा सामान्य जनता का सरकार की, उसे सुरक्षित रखने की क्षमता के बारे में भ्रम टूट जाता है।

इस अवस्था के बाद 'चल आक्रमण' की एक अवस्था आती है जिसमें आगे बढ़ने पीछे हटने तथा अप्रत्याशित आक्रमण की तकनीक का गुरिल्ला युद्ध की तरह परन्तु अधिक शक्ति के साथ उपयोग किया जाता है। ऐसी अवस्था निस्सन्देह तब प्रारम्भ हो सकती है जबकि शत्रु पर्याप्त कमजोर हो तथा क्रांतिकारी शक्तियाँ पर्याप्त रूप से मजबूत हो। इस अवस्था के बाद ही क्रान्ति पारम्परिक स्थिति वाले युद्ध की तरफ बढ़ती है जिसमें शत्रु का पर्ण सफाया ले जाएगा। चूँकि उद्देश्य अन्तिम राजनीतिक विजय है धैर्य क्रांतिकारी के प्रधान सदगुणों मे से एक सदेगुण होना चाहिए। लंबे युद्ध की ऐसी रणनीति, जैसाकि माओ ने अच्छी तरह अनुभव किया, एक विचारणीय काल अवधि ले सकती है ।

10.18 माओत्सेतुंग का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत

मार्क्स की तरह उसने विश्वास किया कि विचार पदार्थ से विकसित होते है। युद्धोत्तर विश्व स्थिति के बारे मे बोलते हुए माओ स्वीकार करता है कि विश्व दो खेमों समाजवादी और पूँजीवादी मे बँटा हुआ है। दोनों के अपने अन्तर्विरोध है। दोनो में एक मात्र अन्तर माओ के अनुसार यह है कि जहाँ पूँजीवाद के अन्तर्विरोध केवल युद्ध व क्रांति के माध्यम से सुलझाए जा सकते है वहाँ समाजवादी जगत के अन्तर्विरोध शांतिपूर्ण तरीकों से सुलझाए जाएँगे।

माओ अनन्त व सदैव अनवरत रहने वाली द्वंद्वात्मक प्रक्रिया के बारे में पूर्णत: स्पष्ट है। इस वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया का विकास अन्तविरोधों और संघर्षों से परिपूर्ण है। इसी तरह से परिपूर्ण है-व्यक्ति के ज्ञानार्जन की प्रक्रिया। बाह्य जगत की सब द्वंद्वात्मक हलचल देर सवेर अपना प्रतिबिम्ब मनुष्य के ज्ञान में पाती है। अस्तित्व में आने की प्रक्रिया, विकास तथा समाप्ति सामाजिक व्यवहार व मानवीय ज्ञान में समान रूप से अनय है। जैसे-जैसे निश्चित विचारों सिद्धांतों योजनाओं और कार्यक्रमों पर आधारित वस्तुनिष्ठ विद्यमान दशाओं को बदलने का व्यवहार कदम-कदम आगे बढ़ता है वैसे-वैसे मनुष्य का वस्तुनिष्ठ यथार्थ का ज्ञान गहरा होता जाता है। यह आन्दोलन या वस्तुनिष्ठ वास्तविकताओं का संसार कभी समाप्त नही होगा। इस तरह मनुष्य की सत्य की पहचान, व्यवहार के माध्यम से, कभी पूर्ण नही होती मार्क्सवाद-लेनिनवाद ने किसी भी तरह से सत्य की खोज को समाप्त नही किया है अपितु यह व्यवहार के माध्यम से तत्वों की पहचान का रास्ता प्रकाशित करना है । हमारा निष्कर्ष है कि हम व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ, सिद्धांत और व्यवहार, ज्ञान और क्रिया की ठोस और ऐतिहासिक एकता का समर्थन करते है।

व्यवहार के माध्यम से सत्य की खोज सत्यापन, और शाश्वत ज्ञान का विवेक पूर्ण ज्ञान में विकास और विवेकपूर्ण ज्ञान क्रांतिकारी व्यवहार के सक्रिय निर्देशन तथा व्यक्तिनिष्ठ और बाह्य जगत व्यवहार की पुर्नरचना के द्वारा व्यवहार, ज्ञान अधिक व्यवहार अधिक ज्ञान तथा इस चक्रिय प्रतिमान की पुनरावृति व अनन्तता द्वारा तथा प्रत्येक चक्र के साथ व्यवहार और ज्ञान के विषयों का उन स्तर पर उत्कर्ष ऐसा द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का दर्शन व ज्ञान और कर्म की एकता का सिद्धांत है।

साम्यवादियों ने सामाजिक प्रक्रियाओं और स्थितियों में सदैव अन्तविरोधों की चर्चा की है किन्तु माओ ने शत्रुता पूर्ण तथा शत्रुता ही अन्तर्विरोधों के बीच सावधानीपूर्वक विभेद-रेखा खीचना उपयोगी समझा। एक शत्रुता पूर्ण अन्तर्विरोध क्रांतिकरियों जो जनता का प्रतिनिधित्व करते है तथा जनता के शत्रुओं के बीच होता है जबकि शत्रुताहीन जनता के बीच विद्यमान हो सकता है। माओ आग्रह करता है कि मजदूर वर्ग और राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग के बीच शत्रुताहीन अन्तर्विरोध है जो लोगों के अन्दर विद्यमान रहता है। माओ, इसके अतिरिक्त, स्टालिन से मतभेद रखाता है- यह सुझाते हुए कि साम्यवादी सरकार वास्तव में जनता का प्रतिनिधित्व करती है तथा दोनों के मध्य फिर भी अन्तर्विरोध हो सकते है।

दार्शनिक अवधारणाओं इस चतुराई पूर्ण व्यवहारिक प्रयोग को उन धारणाओं मे देखा जा सकता है जिन्हें माओ ने नया प्रजातंत्र' और अपना विशिष्ट सिद्धांत समाजवादी परिवर्तन' कहा। 1940 में माओ ने क्रांति के बाद के चीन के लिए एक राजनीतिक व्यवस्था प्रस्तावित की जो रूसी प्रतिमान से महत्पूर्ण पक्षों में भिन्न थी। उसने इसका पुरातन परम्परा की तरह सर्वहारा का अधिनायकत्व' के रूप में वर्णन नहीं किया और न ही उस रूप में जिसे स्टालिन ने' कृषकों और श्रमिकों की प्रजातांत्रिक तानाशाही कहा बल्कि सर्वहारा के नेतृत्व में समस्त साम्राज्यवाद विरोधी तथा सामन्तवाद विरोधी शक्तियों की संयुक्त तानाशाही के अधीन प्रजातांत्रिक गणराज्य" के रूप में उसका वर्णन किया। 1949 में चूँकि सम्पूर्ण विजय करीब थी उसने राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग को शामिल करने का आहवान किया।

राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग (जो पारम्परिक दृष्टिकोण से जन शत्रु है) को नए प्रजातंत्र में शामिल कर लिया गया यद्यपि माओ यह संकेलित करने में सावधान था कि उनकी नियंत्रणकारी भूमिका नही होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्हें व्यापार में विचारणीय समय तक, रहने की इजाजत दी गई, इस प्रकार समाजवादी परिवर्तन का प्रतिमान बदलकर साम्राज्यवाद सर्वाधिक भयानक शत्रु के रूप में अभी भी हमारे साथ खड़ा हुआ है। चीन का आधुनिक उद्योग अब भी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लघु भाग का निर्माण करता है। साम्राज्यवादी दमन का प्रतिरोध करने के लिए तथा पिछड़ी अर्थव्यवस्था को उच्चस्तर पर उठाने के लिए चीन को शहरी और ग्रामीण पूँजीवाद के सारे कारकों का उपयोग करना चाहिए जो लाभप्रद है तथा राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था व जनता की आजीविका के, लिए हानिकारक नहीं है और इस सामान्य संघर्ष में हमे राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के साथ एकता करनी चाहिये यह तथ्य कि राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग क्रांति की शक्तियों के साथ शत्रुताहीन अन्तर्विरोध की स्थिति में खड़ा है मार्क्सवादी फैशन में सेद्धांतिक रूप से मजबूत तथा व्यवहारिक रूप से उपयोगी था।

10.19 माओत्सेतुंग और सांस्कृतिक क्रांति

1966 में माओ ने चीन को हिला दिया तथा महान् सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का अभियान चला कर विश्व का ध्यान आकर्षित किया। युवा छात्रों की भीड़ को रेड गार्डस् में संगठित किया गया तथा उन्हें चीनी समाज के अधिक जमें हुए क्षेत्रों के विरुद्ध, कुछ सीमा तक साम्यवादी दल के विरुद्ध, निवेशन किया गया। सांस्कृतिक क्रांति का प्रारूप माओ के चीनी मार्क्सवादी समाज को औद्योगिकरण और जीवन के परवर्ती नौकरशाहीकरण से बचाने के लिए तैयार किया गया जो कि आधुनिक पश्चिम व सोवियत संघ में अधिकाधिक बढ़ रहा है। फिर भी साक्ष्य सुझाते है कि ये महत्वपूर्ण सेद्धांतिक अन्तर व्यवहार मे, समाप्त हो गए और चीनी समाज एक अराजकता पूर्ण स्थिति में पहुँच गया जब तक कि सेना ने व्यवस्था पुर्नस्थापित नही की ।

10.20 सारांश

इस प्रकार हम पाते है कि मार्क्स ने समाजवाद की समस्या को द्वंद्वात्मक भौतिकवाद और आर्थिक निर्धारणवाद के वैज्ञानिक नियमों से जिनको कि आर्थिक शक्तियों और कारकों को इतिहास के सामाजिक और राजनीतिक विकास के उत्प्रेरक के रूप में दर्शाया गया, वैज्ञानिक धरातल पर अवस्थित किया। उसके अनुसार यह उत्पादन प्रणाली है जो सामन्तवाद, पूंजीवाद और समाजवाद की तीनों अवस्थाओं में मानव जाति के जीवन और राजनीति और समाज के विकास के स्वरूप निर्धारण करती है।

अन्तर्विरोधों तथा शोषित मजदूरों और शोषक पूँजीपतियों के मध्य संघर्ष से क्रांति का प्रादुर्भाव होता है। सर्वहारा वर्ग पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध संघर्ष का नेतृत्व करता है और इससे वर्गाविहीन समाज के उदय का मार्ग प्रशस्त होता है। वर्गाविहीन समाज की यह अवस्था एक विकास प्रक्रिया है जिसमें दो चरण है ।

प्रथम चरण राजनीतिक क्रान्ति का है जिसमें मध्यम वर्ग की स्थायी प्रजातांत्रिक क्रांति से सामन्तवादी शोषण का अन्त होता है तथा बुर्जुआ प्रजातांत्रिक तथा श्रमिकों के शोषण के यंत्र के पूर्व में पूर्ववत् बना रहता है। जिससे इसके बाद सामाजिक क्रांति का या बुर्जुआ व सर्वहारा के वर्ग संघर्ष का द्वितीय चरण आता है। यह वर्ग विहीन समाज की ओर बढ़ता है क्योंकि सर्वहारा की विजय के बाद और कोई वर्ग शोषित किए जाने के लिए नही बचेगा। चूँकि यह दमन और शोषण की समाप्ति सूचक है अत: राज्य की कोई आवश्यकता नही होगी और वह स्वत: समाप्त हो जाएगा। लेनिन में वर्ग विहीन समाज से राज्यविहीन समाज के विचार का तार्किक विकास देखते है अपितु साम्राज्यवाद लेनिन के अनुसार विकास की उच्चतम अवस्था है जो शोषक पूँजीपतियो तथा शोषित श्रमिकों के मध्य संघर्ष का द्वंद्वात्मक शक्तियों को और अधिक तीव्र बना देता है तथा जिसकी परिणति राज्यविहीन वर्गविहीन समाज के सुप्रभात में होनी पूर्व निश्चित है। माओत्सेतुंग लेनिन से सर्वहारा को क्रांति अग्रिम दस्ता मानने व कृषक वर्ग की व जिसका कि मार्क्स ने अच्छे की वर्ग संघर्ष में महत्व दिए जाने पर सहमत था किन्तु माओ ने एक कदम आगे बढ़कर श्रमिकों की अपेक्षा कृषकों से अधिक बल दिया तथा तुलना में ग्रामीण क्षेत्र व गाँवों पर अधिक बल दिया जिनको कि क्रांति के महान् सेनिक राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक गढो के रूप में सुदृढ़ किया जाना था तथा इन क्षेत्रों से गुरिल्ला युद्ध की रणनीति का

विकास कर शहरो को घेरा जाना था। इस प्रकार सेनिक साम्यवाद माओ के साम्यवादी सिद्धांत या उसकी सांस्कृतिक क्रांति की योजना का शेष भाग था। इसके अतिरिक्त जहाँ मार्क्स और लेनिन के समाजवादी विचारों पर था वही माओ ने इन्हें चीन के इतिहास, विरासत और संस्कारों के सन्दर्भ में रखा। इस प्रकार उसने साम्यवाद के एशियाई स्वरूप को जन्म दिया।

10.21 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कार्ल मार्क्स — दास केपिटल
2. मार्क्स और एंगेल्स — साम्यवादी घोषणापत्र
3. लेनिन — क्लेक्टेड वर्क्स
4. सेबाइन — राजनीतिक सिद्धान्त का इतिहास
5. इनिग — हिस्ट्री ऑफ पालिटिकल थ्योरीज (3 खण्ड)
6. लास्की — कम्यूनिज़्म
7. बार्कर — प्रिंसिपल्स ऑफ सोशल एण्ड पॉलिटिकल थ्योरी ।

MAHI-03/ISBN13/978-81-8496-262-8